सामाजिक विज्ञान

इतिहास

भारत एवं विश्व

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

कक्षा 10 के लिए पाठ्यपुस्तक

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
Board of School Education Haryana

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यशामलां मातरम्।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीं
फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीं
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीं
सुखदां वरदां मातरम्।। 1 ।।
वन्दे मातरम्।
कोटि-कोटि-कण्ठ-कल-कल-निनाद-कराले
कोटि-कोटि भुजैर्धृत-खरकरवाले,
अबला केन मा एत बले।
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीं
रिपुदलवारिणीं मातरम्।। 2 ।।
वन्दे मातरम्।
तुमि विद्या, तुमि धर्म तुमि हृदि,
तुमि मर्म त्वं हि प्राणाः
शरीरे बलते तुमि मा शक्ति
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गडि मन्दिरे-मन्दिरे मातरम्।। 3 ।।
वन्दे मातरम्।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी
कमला कमलदलविहारिणी वाणी विद्यादायिनी,
नमामि त्वाम् नमामि कमलां
अमलां अतुलां सुजलां सुफलां मातरम्।। 4।।
वन्दे मातरम्।
श्यामलां सरलां सुस्मितां
भूषितां धरणीं भरणीं मातरम्।। 5 ।।
वन्दे मातरम्।।
भारत माता की जय।।

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

सामाजिक विज्ञान

इतिहास

भारत एवं विश्व

कक्षा 10 के लिए पाठ्यपुस्तक

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
Board of School Education Haryana

मूल संस्करण :

© हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

संस्करण : **प्रथम - 2022**

संख्या : 3,00,000

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, इस प्रकाशन के किसी भी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटो प्रतिलिपि, रिकार्डिंग अथवा किसी विधि से पुनः प्रयोग पद्धति द्वारा इसका संग्रहण और प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना, यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर पुनःविक्रय या किराये पर न दी जायेगी और न ही बेची जायेगी।
- सभी मानचित्र ArcGIS सॉफ्टवेयर के माध्यम से तैयार किए गए हैं। इस प्रक्रिया में कई मुक्त स्रोतों से जुटाए गए भू-आकृतिक आंकड़ों का प्रयोग किया गया है। सभी मानचित्रों का प्रति सत्यापन कर लिया गया है एवं अशुद्धियों को न्यूनीकृत करने का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है, यद्यपि आधार मानचित्र की शुद्धता के आधार पर सीमांकन में बहिर्वेशन अथवा अंतर्वेशन की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि आधिकारिक और स्थापित मानचित्रों को ही आधार मानचित्रों के रूप में प्रयुक्त किया गया है तथापि मानचित्रों में कोई असंगतता सुधी पाठकों के ध्यान में आती है, तो वे यथोचित प्रमाणों के साथ उसे शुद्धिकरण हेतु प्रस्तुत करने की कृपा करें।
- पाठ्यपुस्तक में प्रयुक्त चित्रों को विभिन्न पुस्तकों, संग्रहालयों और इंटरनेट पर उपलब्ध मुक्त स्रोतों से संग्रहीत किया गया है। चित्रों के प्रयोग का उद्देश्य विषयवस्तु का स्पष्टीकरण तथा छात्रों का घटनाओं, पात्रों और स्थानों से जुड़ाव करवाने का है। इन चित्रों को मात्र सामान्य सूचना एवं शैक्षिक उद्देश्यों के लिए ही प्रयोग किया गया है।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टीकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य मान्य नहीं होगा।

सचिव

मुद्रक : **सुप्रीम ऑफसेट प्रेस**, 133, उद्योग केंद्र एक्स.-1, ग्रेटर नोएडा, उ.प्र.

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

प्राक्कथन

समय परिवर्तन के साथ-साथ राष्ट्रीय उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा में परिवर्तन अति आवश्यक है ताकि विकास तीव्रतम गति से हो। विद्यालयी शिक्षा को प्रभावशाली, सकारात्मक व सुरुचिपूर्ण बनाने हेतु पाठ्यचर्या में समय-समय पर सकारात्मक बदलाव करना एक आवश्यक कदम है। वर्तमान में नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अंतर्गत समस्त शिक्षण अथवा शैक्षणिक क्रियाओं के केन्द्र में छात्र हैं। इसलिए छात्रों की सीखने के प्रति रुचि बढ़ाने, उनका स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर स्वतन्त्र चिंतन विकसित करने के उद्देश्य से भी पाठ्यचर्या में परिवर्तन आवश्यक है। इस कार्य में शिक्षक की सहयोगी एवं मार्गदर्शक की भूमिका अपेक्षित रहती है।

इस प्रकार पाठ्यचर्या में बदलाव की आवश्यकता को देखते हुए, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड ने इतिहास विषय के विशेषज्ञों (जिनमें विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक के शिक्षक शामिल थे) से विचार-विमर्श करके कक्षा छठी से दसवीं तक के इतिहास विषय के पाठ्यक्रम का विश्लेषण करते हुए नया पाठ्यक्रम तैयार किया है। इस पाठ्यक्रम को तैयार करते समय राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की उस भावना को ध्यान में रखा गया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न विद्यालयी विषयों के माध्यम से छात्रों को भारत का उपयुक्त ज्ञान कराने की अनुशंसा की गई है। इस परिधि में भारतवासियों की सफलता की गाथाएँ तथा भविष्य की चुनौतियों का उल्लेख व भारत के सुदूर क्षेत्रों में बसने वाले समाज की ज्ञान परम्पराओं का विशेष समावेश करने की बात कही गई है। शिक्षा नीति-2020 के निर्देशों की अनुपालना इतिहास की इन पुस्तकों के माध्यम से करने का सार्थक प्रयत्न किया गया है।

परिवर्तित पाठ्यक्रम के अनुसार छठी कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक क्रमश: हमारा भारत-I (कक्षा-6), हमारा भारत-II (कक्षा-7), हमारा भारत-III (कक्षा-8), हमारा भारत-IV (कक्षा-9) और भारत एवं विश्व (कक्षा-10) नाम से नई पाठ्यपुस्तकों को तैयार करवाते समय यह भी ध्यान रखा गया कि ये सरल, सुरुचिपूर्ण, सुग्राह्य व आकर्षक हों, ताकि छात्र आसानी से इनमें उपलब्ध ज्ञान को आत्मसात् कर स्थानीय एवं राष्ट्रीय तथा सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ें। छात्र ऐतिहासिक व सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्र और संविधान के प्रति निष्ठा, आत्मसम्मान व स्वाभिमान से ओत-प्रोत होकर स्वयं को एक सुसभ्य, सुसंस्कृत तथा सकारात्मक नागरिक के रूप में स्थापित कर सकें।

बोर्ड को इन पुस्तकों को प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है, साथ ही यह विश्वास भी है कि ये पाठ्यपुस्तकें छात्रों व शिक्षकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगी। ये पाठ्यपुस्तकें अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ छात्रों के व्यक्तित्व के चहुंमुखी विकास में प्रभावी मार्गदर्शन करेंगी। पुस्तकों को भविष्य में श्रेष्ठतर तथा गुणवत्तापूर्ण बनाने के लिए आपके बहुमूल्य सुझाव आमंत्रित हैं।

अध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

उपाध्यक्ष
हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड
भिवानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

इतिहास बोध

सामाजिक विज्ञान के अंतर्गत आने वाले सभी विषय यथा इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र इत्यादि हमें दुनिया को समझने में मदद करते हैं। इस समझ के आधार पर हम अपने व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन को भविष्य में श्रेष्ठतर बनाने का सपना संजोते हैं और उसके लिए यथेष्ट उद्यम करते हैं। आज की दुनिया एकाएक निर्मित नहीं हुई, अपितु हजारों वर्षों से बहुत धीरे-धीरे समाज में घटने वाले परिवर्तनों का परिणाम है। इन परिवर्तनों की कहानी को उनके यथार्थ स्वरूप में समझना ही सम्यक् इतिहास बोध है।

प्राय: दो प्रकार के लोग हमारे ध्यान में आते हैं- एक वे लोग, जिन्होंने ऐसे सामाजिक परिवर्तनों को प्रारम्भ किया और उनका नेतृत्व किया तथा दूसरे वे जिनके जीवन इन परिवर्तनों से प्रभावित हुए। एक स्वाधीन और संप्रभु राष्ट्र के नागरिकों के लिए यह बहुत आवश्यक है कि वे अपनी विद्यालयी शिक्षा के दौरान ही इतिहास की घटनाओं और काल-क्रम के परिवर्तनों को वस्तुपरक ढंग से समझें और उसी समझ के आधार पर राष्ट्र के भविष्य का मार्ग प्रशस्त करने में अपना योगदान दें। किन्तु यह भी एक कटु सत्य है, कि दुनिया के अनेक देश लंबे समय तक औपनिवेशिक ताकतों की दासता के बंधक रहे हैं। इन ताकतों ने न केवल अपने अधीनस्थ राष्ट्रों के संसाधनों पर कब्जा करने के कुत्सित प्रयास किये, अपितु उन देशों के नागरिकों की इतिहास संबंधी समझ को भी नियंत्रित करने का प्रयत्न किया। इस नियंत्रण के लिए विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली इतिहास की विद्यालयी पाठ्यपुस्तकों को एक उपकरण के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। भारत भी लंबे समय तक औपनिवेशिक दासता से ग्रसित रहा। औपनिवेशिक शासकों ने भारतीय समाज को उसकी अस्मिता से विमुख करने के लिए हमारे नायकों, योद्धाओं, क्रांतिकारियों, संतों के योगदान को तोड़-मरोड़कर पाठ्यपुस्तकों में प्रस्तुत किया, वहीं दूसरी ओर विदेशी आक्रांताओं और विस्तारवादी शक्तियों के कृत्यों को उचित ठहराने तथा उनके भीषण प्रभावों को कम करके दिखाने की कोशिश भी इसी माध्यम से की गयी।

इस स्थिति के आलोक में यह आवश्यक हो जाता है कि स्वाधीन देश में इतिहास के प्रसंगों को वस्तुपरक ढंग से विद्यालयों में प्रारम्भ से ही छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत किया जाये तथा उनके वर्तमान को समझने और भविष्य की कल्पना बुनने की क्षमता का निर्माण करना इतिहास की पाठ्यपुस्तकों का एक प्रमुख दायित्व है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तकें इसी दिशा की ओर एक कदम हैं।

अध्यक्ष

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड

भिवानी

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

कक्षा छठी से दसवीं

संरक्षक

प्रो. जगबीर सिंह, अध्यक्ष, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

डॉ. ऋषि गोयल, निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, हरियाणा, गुरुग्राम

मुख्य समन्वयक

डॉ. रमेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, अहड़वाला, बिलासपुर (यमुनानगर)

समन्वयक

डॉ. लक्ष्मी नारायण, प्राध्यापक (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ततारपुर इस्तमुरार (रेवाड़ी)

लेखक मंडल

डॉ. रमेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, अहड़वाला, बिलासपुर (यमुनानगर)

डॉ. लक्ष्मी नारायण, प्राध्यापक (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ततारपुर इस्तमुरार (रेवाड़ी)

डॉ. गुरमेज सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), डी.ए.वी. महाविद्यालय, सढौरा (यमुनानगर)

डॉ. संजीव कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, छछरौली (यमुनानगर)

डॉ. मनमोहन शर्मा, पूर्व अध्यक्ष (इतिहास विभाग), बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर (रोहतक)

डॉ. सुरेन्द्र कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), वैश्य महाविद्यालय, भिवानी

डॉ. यशवीर सिंह, प्राचार्य, जनता विद्या मंदिर गणपत राय, रासीवासिया महाविद्यालय, चरखी दादरी

डॉ. नरेन्द्र परमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, हरियाणा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महेन्द्रगढ़

डॉ. सुखवीर सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), बंसीलाल राजकीय महाविद्यालय, लोहारू (भिवानी)

डॉ. बी.बी. कौशिक (दिवंगत), सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), पी.आई.जी. राजकीय महिला महाविद्यालय, जीन्द

श्री राम कुमार केसरिया, एक्सटैंशन लेक्चरर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, जीन्द

डॉ. राकेश कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, मातनहेल (झज्जर)

डॉ. अशोक कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), राजकीय महिला महाविद्यालय, गुरावड़ा (रेवाड़ी)

श्री विपिन शर्मा, पी.जी.टी. (इतिहास), महाराजा अग्रसैन कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सिरसा

श्री कुन्दन लाल कालड़ा, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, भटौली (यमुनानगर)

श्री सुरेश पाल, सेवानिवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, भंभौल (यमुनानगर)

डॉ. दिलबाग बिसला, असिस्टेंट प्रोफेसर (गेस्ट फैकल्टी), चौ. रणबीर सिंह विश्वविद्यालय, जीन्द

डॉ. दलजीत बिसला, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, बराह कलां (जीन्द)

डॉ. धीरज कौशिक, असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास) (अनुबंधित), दयाल सिंह कॉलेज, करनाल

डॉ. मनोज कुमार, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, ग्योंग (कैथल)

डॉ. विनोद कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (राजनीति शास्त्र), आर.के.एस.डी. कॉलेज, कैथल

© BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

श्री अजय सिंह, एक्सटेंशन लेक्चरर (इतिहास), राजकीय महाविद्यालय, बिरोहड़ (झज्जर)

श्रीमती पूजा छाबड़ा, पी.जी.टी. (इतिहास), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र

डॉ. नीरज कांत, पी.जी.टी. (इतिहास), राजकीय मॉडल संस्कृति वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, सांघी (रोहतक)

श्री पिरथी सैनी, प्रधानाचार्य, राजकीय कन्या वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, जगाधरी (यमुनानगर)

डॉ. हरीश चन्द्र झंडई, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर (इतिहास), एम.एल.एन. कॉलेज, यमुनानगर

सम्पादक मंडल

डॉ पवन कुमार, असिस्टेंट प्रोफेसर (भूगोल विभाग) चौ. बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी

श्रीमती सुरिन्द्र कौर सैनी, पी.जी.टी. (अर्थशास्त्र), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र

श्री जोगिन्द्र सिंह, पी.जी.टी. (हिन्दी), राजकीय उच्च विद्यालय, सिधनवा, बहल (भिवानी)

श्रीमती मीना रानी, हिन्दी अधिकारी, गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिसार

डॉ. मुदिता वर्मा, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार

श्री अरविंद कुमार, पी.जी.टी. (अंग्रेजी), राजकीय उच्च विद्यालय, सांचला (फतेहाबाद)

श्रीमती सीमा गुप्ता, टी.जी.टी (सामाजिक अध्ययन), गीता निकेतन आवासीय विद्यालय, कुरुक्षेत्र

श्री नीरज अत्री, प्रेजीडेंट, नेशनल सेंटर फॉर हिस्टोरीकल एंड कम्पेरिटीव स्टड्रीज, पंचकूला

श्री अश्विनी शाडिल्य, पी.जी.टी. (हिन्दी), जिला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, पंचकूला

श्री राजेश कुमार, डी.टी.पी. ऑपरेटर, चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

समन्वय सहायक

श्री चांद राम शर्मा, सहायक सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

श्रीमती सन्तोष नरवाल, सहायक सचिव, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

श्री नेपाल सिंह, अधीक्षक, हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, भिवानी

तकनीकी सहयोग, ग्राफिक्स एवं साज-सज्जा

श्री कुलदीप कुमार, ग्राफिक डिजाइनर (अनुबंधित), चौ. चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार

श्री भारत सैनी, ग्राफिक डिजाइनर, कुरुक्षेत्र

पुनरीक्षण एवं अनुमोदन समिति

प्रो. के. रत्नम, सदस्य सचिव, भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद (आई.सी.एच.आर.), नई दिल्ली

प्रो. ज्ञानेश्वर खुराना, सेवानिवृत प्रोफेसर (मध्यकालीन इतिहास) व भूतपूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

प्रो. विघनेश कुमार त्यागी, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, चौ. चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ (उत्तर प्रदेश)

डॉ. प्रियतोश शर्मा, अध्यक्ष, इतिहास विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

प्रो. सुरजीत कौर जॉली, सेवानिवृत प्राचार्या, श्यामा प्रसाद मुखर्जी महाविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. प्रशान्त गौरव, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डीगढ़

डॉ. अंजलि जैन, एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, इतिहास विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक

डॉ. पी. सी. चान्दावत, सेवानिवृत प्राचार्य, एन.डी.बी. राजकीय महाविद्यालय, नोहर, हनुमानगढ़ (राजस्थान)

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

आभार

ये पुस्तकें अनेक इतिहासकारों, शिक्षाविदों और शिक्षकों के सामूहिक प्रयत्नों का प्रतिफल है। इन पुस्तकों के लेखन और संशोधन में लम्बा समय लगा है। ये पुस्तकें विभिन्न कार्यशालाओं एवं बैठकों में हुई चर्चाओं और विचारों के आदान-प्रदान से उपजी हैं। इस प्रक्रिया में विभिन्न लोगों ने अपनी-अपनी क्षमता और योग्यता के अनुरूप पूर्ण सहयोग दिया है।

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् हरियाणा ने इन पुस्तकों के निर्माण की प्रेरणा पद्म भूषण श्री दर्शन लाल जैन (दिवंगत) एवं प्रख्यात इतिहासकार प्रोफेसर सतीश चंद्र मित्तल (दिवंगत) से ली। शिक्षा बोर्ड, प्रदेश के शिक्षा मंत्री श्री कंवर पाल तथा विद्यालयी शिक्षा के अतिरिक्त मुख्य सचिव डॉ. महावीर सिंह, भा.प्र.से. का आभार व्यक्त करता है, कि उन्होंने पुस्तकों को तैयार कराने का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड को दिया। इन पुस्तकों को तैयार करने में अनेकों व्यक्तियों, संस्थाओं एवं संगठनों ने मदद की है। इस कार्य में दिए गए सहयोग के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड एवं राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् (हरियाणा), दिल्ली, पंजाब, हरियाणा और राजस्थान में स्थित विभिन्न संग्रहालय एवं पुस्तकालय के संचालकों का आभार व्यक्त करता है। पुस्तकों में लगाए गए व्यक्तियों, अभिलेखों, स्मारकों, मूर्तियों, खुदाई में मिले पुरातात्विक अवशेषों, मिट्टी के बर्तनों, उपकरणों के व अन्य चित्रों के लिए हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड, राज्य शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, हरियाणा पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, लोकसभा गैलरी एवं विभिन्न इंटरनेट वेबसाइट्स का भी आभार व्यक्त करता है।

हमने पुस्तक में सहयोग के लिए सभी के आभार-ज्ञापन का प्रयास किया है लेकिन अगर किसी व्यक्ति या संस्था का नाम छूट गया है तो इस भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं।

निदेशक
राज्य शैक्षणिक अनुसंधान
एवं प्रशिक्षण परिषद हरियाणा
गुरुग्राम

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

[1][भाग 4क]

मूल कर्त्तव्य

51 क. मूल कर्त्तव्य–भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह–

क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्चच आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

ग) भारत की प्रभुता, एकता और अखण्डता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।

घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

ड) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध है।

च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परिरक्षण करे।

छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणि मात्र के प्रति दयाभाव रखे।

ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरन्तर बढ़तेर हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

[2][ट) यदि माता–पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

---

1. संविधान (बयालीसवां संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 11 द्वारा (3-1-1977 से) अंत:स्थापित।

2. संविधान (छियालीसवां संशोधन) अधिनियम, 2002 की धारा 4 द्वारा (1-4-2010 से) अंत:स्थापित।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

विषय सूची

	अध्याय	पृष्ठ संख्या
1.	सरस्वती-सिन्धु सभ्यता	1
2.	प्राचीन विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ	11
3.	विश्व के प्रमुख दर्शन	32
4.	मध्यकालीन समाज : यूरोप एवं भारत	47
5.	ईसाइयत एवं इस्लाम : उदय व टकराव	61
6.	भारत पर विदेशी आक्रमण	71
7.	उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद	88
8.	भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन	103
9.	स्वतंत्र भारत के 50 वर्ष	117

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

भारत का संविधान

भाग-3 (अनुच्छेद 12-35)

(अनिवार्य शर्तों, कुछ अपवादों और युक्तियुक्त निर्बंधान के अधीन)

द्वारा प्रदत्त

मूल अधिकार

समता का अधिकार

- विधि के समक्ष एवं विधियों के समान संरक्षण।
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर।
- लोक नियोजन के विषय में।
- अस्पृश्यता और उपाधियों का अंत।

स्वातंत्र्य-अधिकार

- अभिव्यक्ति, सम्मेलन, संघ, संचरण, निवास और वृत्ति का स्वातंत्र्य।
- अपराधों के लिए दोष सिद्धि के संबंध में संरक्षण।
- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का संरक्षण।
- छः से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा।
- कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

- मानव के दुर्व्यापार और बलात श्रम का प्रतिषेध।
- परिसंकटमय कार्यों में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध।

धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार

- अंतःकरण की और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार की स्वतंत्रता।
- धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता।
- किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के संबंध में स्वतंत्रता।
- राज्य निधि से पूर्णतः पोषित शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के संबंध में स्वतंत्रता।

संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार

- अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी भाषा, लिपि या संस्कृति विषयक हितों का संरक्षण।
- अल्पसंख्यक-वर्गों द्वारा अपनी शिक्षा संस्थाओं का स्थापन और प्रशासन।

सांविधानिक उपचारों का अधिकार

- उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालय के निर्देश या आदेश या रिट द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने का उपचार।

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

अध्याय - 1

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता

सरस्वती-सिन्धु नदियों के उपजाऊ मैदान में भारत की प्रथम नगरीय सभ्यता का उदय हुआ। इस सभ्यता के पुरास्थल बड़ी संख्या में सरस्वती व सिन्धु नदियों के किनारे पर होने के कारण इस सभ्यता को सरस्वती-सिन्धु सभ्यता कहा जाता है। हालांकि इस सभ्यता को 'सिन्धु सभ्यता' और 'हड़प्पा सभ्यता' के नाम से भी जाना जाता है। कालानुक्रम की दृष्टि से इस सभ्यता को मेसोपोटामिया और मिस्र की सभ्यताओं के समकालीन माना जाता है।

सर्वप्रथम 1921 ई. में दयाराम साहनी ने पंजाब प्रांत में हड़प्पा और 1922 ई. में राखल दास बनर्जी ने सिंध प्रांत में मोहनजोदड़ो नामक पुरास्थलों का उत्खनन किया। जिसके फलस्वरूप इस अज्ञात भारतीय नगरीय सभ्यता के महत्व की ओर लोगों का विशेष रूप से पुरातत्त्वविदों का आकर्षण बढ़ा।

विस्तार

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता का विस्तार पूर्व में आलमगीरपुर (पश्चिमी उत्तर प्रदेश) से लेकर पश्चिम में सुत्कागेनडोर (बलूचिस्तान) तक तथा उत्तर में मांडा (जम्मू) से लेकर दक्षिण में दायमाबाद (महाराष्ट्र) तक था। इस सभ्यता का क्षेत्रफल 2,15,000 वर्ग किलोमीटर है। इसके पुरास्थलों की दूरी पूर्व से पश्चिम तक लगभग 1600 किलोमीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक लगभग 1400 किलोमीटर है। इसके पुरास्थल भारत में पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान, गुजरात और पाकिस्तान में बलूचिस्तान, सिंध आदि प्रान्तों में मिलते हैं। राखीगढ़ी, बनवाली (हरियाणा), मोहनजोदड़ो (सिंध), हड़प्पा (पंजाब),

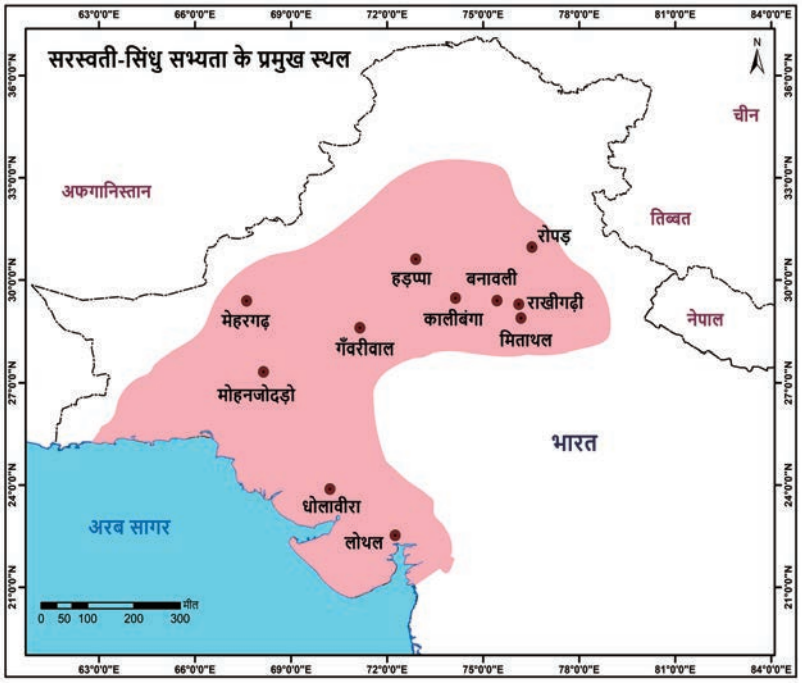

चित्र 1: सरस्वती-सिंधु सभ्यता के पुरास्थल

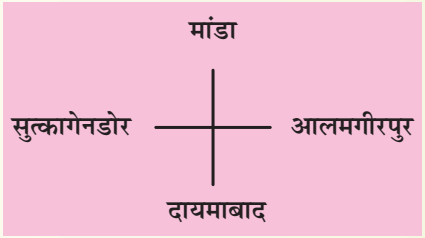

चित्र 2: सरस्वती-सिंधु सभ्यता का क्षेत्र विस्तार

धौलावीरा (गुजरात) और कालीबंगा (राजस्थान) इस सभ्यता के प्रमुख नगर थे।

कालक्रम

कालक्रम की दृष्टि से सरस्वती-सिन्धु सभ्यता को तीन चरणों में विभाजित किया जाता है। रेडियो कार्बन तिथियों से पता चलता है कि 7500-7000 ई. पूर्व सरस्वती नदी घाटी को प्रथम कृषि संस्कृतियों के लोगों ने अपना निवास स्थान बनाना शुरू कर दिया था। 3200 ई. पूर्व में नगर-योजना के लक्षण, लेखन कला, मुहरों का विकास और नाप-तोल की पद्धति के साथ इन प्रथम कृषि संस्कृतियों का परिवर्तन विकसित ग्रामीण संस्कृति में हुआ जिसने 2600 ई. पूर्व तक नगरीय जीवन की विशेषताओं को आत्मसात् कर लिया जिसके कारण भारत की प्रथम नगरीय सभ्यता के नगरों का उदय हुआ। 1900 ई. पूर्व तक आते आते इस नगरीय सभ्यता का बदलाव ग्रामीण संस्कृति में होना शुरू हो गया। 1300 ई. से पूर्व इस नगरीय सभ्यता का पतन हो गया।

चरण-1	प्रारंभिक काल (>4000-2600 ई.पू.)	प्रथम कृषि संस्कृति (>4000-3200 ई.पू.) विकसित ग्रामीण संस्कृति (3200-2600 ई.पू.)
चरण-2	नगरीय काल (2600-1900 ई.पू.)	
चरण-3	उत्तर काल (1900-1300 ई.पू.)	

गतिविधि : रेडियो कार्बन तिथि के बारे में जानकारी संकलित करें।

नगर योजना

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की नगर योजना में समरूपता होते हुए भी कुछ क्षेत्रीय विभेद मिलते हैं। सभ्यता के नगरों में प्राय: पूर्व और पश्चिम दिशा में दो टीले मिलते हैं। पूर्व दिशा के टीले पर आवास क्षेत्र और पश्चिम टीले पर दुर्ग स्थित होता था। ये नगर मजबूत रक्षा प्राचीर से युक्त थे। रक्षा प्राचीर में बुर्ज बने हुए थे। नगर के आवास क्षेत्र में सामान्य नागरिक, व्यापारी, शिल्पकार, कारीगर और श्रमिक रहते थे। दुर्ग के अन्दर प्रशासनिक, सार्वजनिक भवन और अन्नागार स्थित थे।

नगर योजना की विशेषताएं

- रक्षा प्राचीर
- सड़कें
- नालियाँ
- भवन
- ईंटों का माप

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की नगर योजना में सड़कों का महत्वपूर्ण स्थान था। मुख्य सड़कें नगर को पांच-छ: खण्डों में विभाजित करती थी। मोहनजोदड़ो में मुख्य सड़कें 9.15 मीटर तथा गलियाँ औसतन 3.0 मीटर चौड़ी थी। कालीबंगा, राखीगढ़ी व मीताथल की सड़कें भी चौड़ी थी। सड़कें कच्ची होती थी। साफ-सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

चित्र 3: स्नानागार मोहनजोदड़ो

चित्र 4: लोथल बंदरगाह

कूड़े-कचरे के लिए सड़कों के किनारे कूड़ेदान रखे जाते थे।

घरों की नालियाँ सड़क के किनारे बड़े नाले में गिरती थी, फिर नालों के माध्यम से पानी नगर से बाहर जाता था। नालियाँ मुख्य रूप से पक्की ईंटों की बनाई जाती थी। इनकी चौड़ाई और गहराई आवश्यकतानुसार निर्धारित की जाती थी। प्रायः नालियों को बड़े आकार की ईंटों से ढका गया था। सम्भवतः नालियों की सफाई समय-समय पर की जाती थी।

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता में आवासीय और सामुदायिक भवन मिलते हैं। आवासीय भवनों में तीन-चार कमरे, रसोईघर, स्नानघर और भवन के बीच में आँगन होता था। सम्पन्न लोगों के घरों में कुआं और शौचालय भी होते थे। भवनों में सीढ़ियों के प्रमाण भी मिलते हैं। मकानों में खिड़कियाँ, रोशनदान, फर्श और दीवारों पर पलस्तर के साक्ष्य मिले हैं। सामुदायिक भवनों में सभा भवन, अन्नागार और स्नानागार आदि मिलते हैं। इन भवनों में 1:2:3 और 1:2:4 अनुपात की ईंटों का प्रयोग होता था।

गतिविधि : अपने आस-पास के सरस्वती-सिन्धु सभ्यता से संबंधित पुरास्थलों का भ्रमण करें।

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की कला

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की कला के अंतर्गत प्रस्तर, धातु और मिट्टी की मूर्तियों का उल्लेख किया जाता है। इसके अतिरिक्त मुहरें, मनके और मिट्टी के बर्तन इसके सौन्दर्यबोध को इंगित करते हैं। प्रस्तर मूर्ति में सबसे उल्लेखनीय 19 सेंटीमीटर लम्बी खण्डित पुरुष की मूर्ति मोहनजोदड़ो से मिली है, जो तिपतिया अलंकरण से

युक्त शाल ओढ़े हुए है। मोहनजोदड़ो से विश्वविख्यात धातु की नर्तकी की मूर्ति मिली है। पुरुषों, स्त्रियों व पशु-पक्षियों की भी मिट्टी की मूर्तियाँ मिली हैं। मानव की मिट्टी की मूर्तियाँ, आभूषण और शिरोवेषभूषा के साथ मिलती हैं। पशु और पक्षियों में बैल, भेड़, बकरी, कुत्ता, हाथी, सूअर, मोर, बत्तख, तोता और कबूतर आदि मुख्य रूप से मिलते हैं।

चित्र 5: पुरुष की मूर्ति

चित्र 6: मिट्टी की मूर्तियाँ

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की कला में मुहरों का महत्वपूर्ण स्थान है। मुहरें मुख्यत: चौकोर या आयताकार हैं। जिन पर सूक्ष्म उपकरणों से पशु-पक्षियों, देवी-देवता एवं लिपि को अंकित किया गया है। सेलखड़ी, गोमेद, शंख, हाथी दांत, सोने, चांदी और तांबे आदि के आभूषण (मनके, चूड़ियाँ, हार, कंगन, अंगूठी आदि) मिलते हैं। इनके अतिरिक्त खेल के उपकरण, मिट्टी के बर्तन और अन्य गृह उपयोगी वस्तुएं भी बनाई जाती थी।

उपयोगी शब्द

मुहर, स्नानागार, अन्नागार, दुर्ग, कार्यशाला, लिपि, सामुदायिक भवन।

राजनीतिक जीवन

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता का प्रचार क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। लेकिन नगर योजना, पात्र परम्परा, उपकरण निर्माण, बाट, माप, मुहरें, लिपि आदि की समरूपता कुशल प्रशासन के अस्तित्व का संकेत करती हैं। लेकिन प्रशासनिक स्वरूप क्या था? यह निश्चित रूप से कहना अत्यंत कठिन होगा। हंटर महोदय ने यहाँ के शासन को गणतंत्रात्मक माना है। सार्वजनिक भवनों और नगर-दुर्ग का उपयोग सम्भवत: परिषद् के सदस्यों के लिए होता होगा। व्हीलर लिखते है कि, 'सत्ता का स्त्रोत कोई भी क्यों न रहा हो, उसमें सम्भवत: धर्म को ही प्रमुखता प्राप्त थी।' मेसोपोटामिया सभ्यता में नगर राज्यों का संचालन पुरोहित-शासकों के हाथ में था और सम्पूर्ण भूमि मंदिरों की सम्पत्ति होती थी। विद्वानों का मानना है कि, 'सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के प्रशासन का संचालन हड़प्पा और मोहनजोदड़ो नामक दो राजधानियों से होता था।' लेकिन राखीगढ़ी और धौलावीरा के आकार को देखकर उनके महत्व को भी नकारा नहीं जा सकता। ये पुरास्थल भी सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के महत्वपूर्ण प्रशासनिक नगरों के रूप में रहे होंगे।

© CBSE, Bhiwani Not to be Republished

चित्र 7: मुहरें

चित्र 8: मिट्टी की कलाकृतियाँ

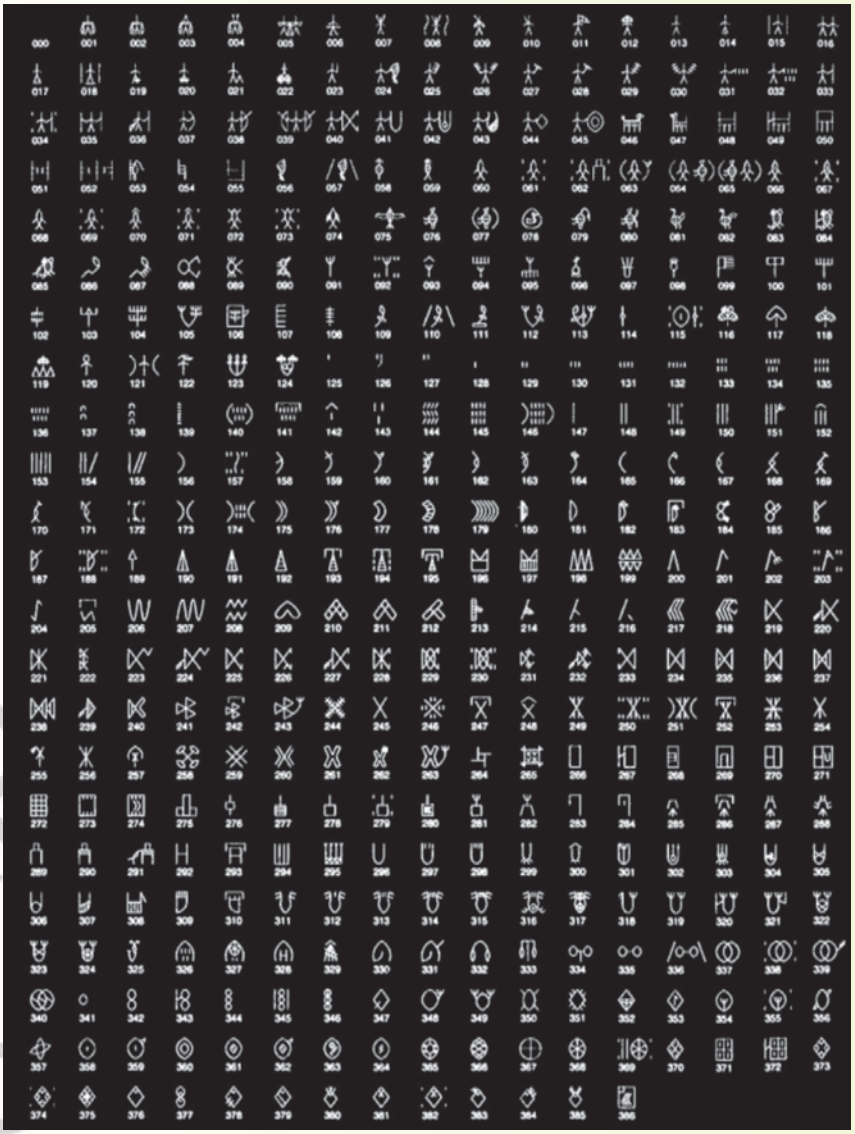

चित्र 9: लिपि

सामाजिक जीवन

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता का समाज अनेक वर्गों में विभाजित रहा होगा। नगर को दुर्ग क्षेत्र और आवास क्षेत्र में विभाजित किया जाता है। नगर-दुर्गों में सम्पन्न व्यक्ति या शासक वर्ग निवास करता था। धौलावीरा के दुर्ग क्षेत्र को दो भागों में बांटा गया था, जिसमे संभवत: एक में शासक वर्ग और दूसरे में महत्वपूर्ण प्रशासनिक अधिकारी रहते होंगे। दुर्ग क्षेत्र में सुरक्षा और विशेष सुविधाओं का ध्यान रखा जाता था। आवासीय क्षेत्र में व्यापारी, सैनिक, अधिकारी, शिल्पी और मजदूर रहते थे। धौलावीरा में इस वर्ग के लोग भी दो अलग-अलग आवासीय क्षेत्रों में रहते थे। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में आवासीय क्षेत्र रक्षा-प्राचीर से भी घिरे हुए नहीं थे किंतु कालीबंगा,

लोथल, बनावली और धौलावीरा में किलेबंदी के साक्ष्य मिले हैं। सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के समाज में कृषक, कुम्भकार, बढ़ई, नाविक, श्रमिक, आभूषण बनाने वाले शिल्पी और जुलाहे आदि अन्य महत्वपूर्ण वर्ग थे।

चित्र 10: मृदभांड

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के लोग शाकाहारी और मांसाहारी दोनों प्रकार का भोजन करते थे। इनका मुख्य भोजन जौ, गेहूँ, चावल, फल, सब्जियाँ, दूध, मांस (मछली, भेड़, बकरी, सूअर आदि) था। खुदाई में मिले चूल्हे, सिल-बट्टे आदि से भोजन पकाने और पीसने के प्रमाण भी मिलते हैं। भोजन के लिए थाली, गिलास, कटोरा और लोटा आदि का प्रयोग किया जाता है।

चित्र 11: आभूषण

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के निवासी वस्त्र और आभूषण के विशेष शौकीन थे। मोहनजोदड़ो से प्राप्त प्रस्तर की मूर्ति तिपतिया अलंकृत शाल ओढ़े हुए है, जिसका बायां कंधा ढका है और दाहिना खुला है। दाढ़ी विशेष रूप से संवरी हुई है और केश पीछे की ओर संवार कर एक फीते से बंधे हुए है। दाहिने हाथ पर एक भुजबन्ध बंधा हुआ है (चित्र 5)। वहीं से प्राप्त एक अन्य मूर्ति कमर पर पारदर्शी वस्त्र पहने हुए है। आभूषणों में मुख्य रूप से हार, भुजबंध, कंगन, अंगूठी आदि पहनी जाती थी। स्त्री और पुरुष दोनों ही आभूषण पहनते थे, जिससे निर्माताओं की कलात्मक अभिरुचि का परिचय मिलता है। धनी लोग सोने-चांदी, अर्ध-कीमती पत्थर, हाथी-दांत आदि के जबकि निर्धन लोग पक्की मिट्टी, हड्डी और पत्थर के आभूषण पहनते थे। सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के लोगों की केश-विन्यास में विशेष रूचि थी। वे मुख्य रूप से हाथी-दांत के कंघे और तांबे के शीशे प्रयोग करते थे। स्त्रियाँ काजल, सुरमा, सिंदूर भी लगाती थी। शतरंज का खेल और नृत्य उनके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे।

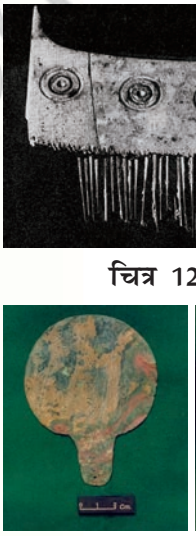

चित्र 12: कंघा

चित्र 13: शीशा

चित्र 14: झुंझना

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के लोग शिकार के भी शौकीन थे। बच्चों के मनोरंजन के लिए खिलौने, झुन्झुने, सीटियाँ और गाड़ियाँ आदि थी।

चित्र 15: शतरंज के खेल की मोहरें

आर्थिक जीवन

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के आर्थिक जीवन में कृषि का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। सरस्वती-सिन्धु का क्षेत्र बहुत उपजाऊ था। यहाँ के लोग मुख्य रूप से गेहूँ, जौ, चावल, मूंग, मसूर, मटर, सरसों, कपास, तिल आदि की कृषि करते थे। विशिष्ट प्रकार की फसलें, फसल बोने की विधि, कृषि के उपकरण, सिंचाई व्यवस्था आदि कृषि के व्यापक विकास को दिखाती है। मेहरगढ़ से प्राप्त पत्थर की दरांति, कालीबंगा से प्राप्त जुते हुए खेत और बनावली से प्राप्त हल का नमूना भी उच्च स्तरीय कृषि को प्रमाणित करते हैं। बड़े-बड़े संग्रहण केन्द्रों से भी व्यापक मात्रा में फसल उत्पादनों के बारे में पता चलता है।

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता में बैल, गाय, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता, गधे और सूअर को प्रमुख रूप से पाले जाते थे। इनका उपयोग दूध, मांस, खाल और ऊन आदि के लिए होता था। बैल का प्रयोग कृषि कार्य के साथ-साथ यातायात के लिए भी किया जाता था। इस सभ्यता के लोगों ने घोड़े और ऊँट को भी पालतू बनाया। हाथी का पालन भी संभवत: प्रारम्भ हो गया था। इनके अलावा जंगली सूअर, चिंकारा, हिरण और नील गाय आदि जंगली जानवरों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के जलचरों तथा पक्षियों के प्रमाण भी मिले हैं।

चित्र 16: जुते हुए खेत

चित्र 17: हल का नमूना

चित्र 18: दरांति

उच्चस्तरीय उद्योग धंधों के साक्ष्य सरस्वती-सिन्धु सभ्यता में मिलते हैं। सैंधव विभिन्न प्रकार के आभूषण, औज़ार और उपकरणों के लिए धातु की ढलाई की तकनीक से भली-भांति परिचित और उनके निर्माण में अत्यन्त निपुण एवम् दक्ष थे। कीमती पत्थर, शंख, सीप और हाथीदांत से विविध प्रकार के आभूषण बनाए जाते थे। राखीगढ़ी और भिरडाना से कार्नेलियन, तिगड़ाना से फियांस और मानहेरू से स्टेटाईट की कार्यशाला के प्रमाण मिले हैं। मिट्टी के बर्तन, ईंट उद्योग, उत्कीर्ण शिल्प और वस्त्र उद्योग भी अत्यन्त विकसित एवं प्रचलित थे। इस काल में सम्भवत: व्यापारिक लोगों के समूह का भी निर्माण हो गया था।

आयात-निर्यात, नाप-तोल की प्रणाली, मुद्राएं, यातायात के स्वरूप एवं साधनों से व्यापारिक गतिविधियों पर समुचित प्रकाश पड़ता है। उस समय धातु और अर्धकीमती पत्थरों का आयात और स्थानीय वस्तुओं का निर्यात किया जाता था। आंतरिक और विदेशी व्यापार स्थल तथा समुद्र दोनों मार्गों से होता था। स्थल मार्ग से व्यापार बैलगाड़ियों के द्वारा किया जाता था। समुद्री मार्ग के प्रमाण मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुहर पर अंकित नाव के चित्र

© CBSE Not to be Republished

और लोथल से मिले मिट्टी की नाव के खिलौने से मिलता है। मेसोपोटामिया के अभिलेख से पता चलता है कि उनके मेलुहा (सरस्वती-सिन्धु सभ्यता) से व्यापारिक सम्बन्ध थे। लोथल से बंदरगाह के साक्ष्य भी मिले हैं। उत्खनन में बड़ी मात्रा में बाट और तराजू के पलड़े मिले हैं। तोल की इकाई 16 के अनुपात में थी। मोहनजोदड़ो से सीप का और लोथल से हाथीदांत के बने पैमाने भी मिले हैं।

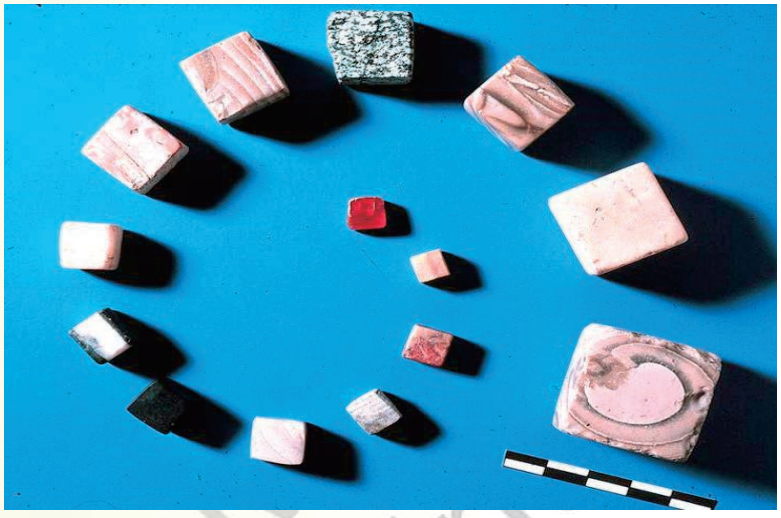

चित्र 19 : बाट

धार्मिक जीवन

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता का अत्यंत विशिष्ट पक्ष उसका धर्म था जिसके अनेक तत्त्व परवर्ती भारतीय समाज में अंगीकृत हुए। वहाँ के लोग मातृ-शक्ति की पूजा करते थे। जिसके साक्ष्य नारी की मिट्टी की मूर्तियों और मुहरों पर नारी आकृतियों के अंकन से मिलते हैं। इन मूर्तियों पर धुएँ के निशान भी मिले हैं। यह सम्भावना है कि इन मूर्तियों के सामने पूजा के लिए कोई वस्तु जलायी गई होगी। इस सभ्यता के अंतर्गत मातृ-शक्ति की उपासना, प्राणी जगत एवं वनस्पति जगत की उपास्य देवी के रूप में प्रचलित थी।

चित्र 20: पशुपति शिव

पशुपति शिव की उपासना सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के पुरावशेषों में देखने को मिलती है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर सींग वाले त्रिमुखी पुरुष को सिंहासन पर योग मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। जिनके दाहिनी तरफ हाथी और बाघ, बायीं तरफ गेंडा और भैंसा दिखाया गया है। सिंहासन के नीचे दो हिरण खड़े दिखलाए गए हैं। इस मूर्ति को पशुपति शिव की मूर्ति माना जाता है। इस सभ्यता के लोगों द्वारा शिवलिंग की भी पूजा की जाती थी।

चित्र 21: शिवलिंग

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता में पशु पूजा और वृक्ष पूजा के भी प्रमाण मिलते हैं। जिसमें मुख्य रूप से एक सींग वाले पशु, बैल, साँप, पीपल

चित्र 22: स्वास्तिक चिह्न

आदि की पूजा की जाती थी। यहाँ के लोगों के बीच योग का भी महत्व रहा है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर में एक पुरुष की आकृति पद्मासन मुद्रा में है और एक अन्य मुहर पर योग पुरुष की आधी खुली आंखें नासिका के अग्रभाग पर केन्द्रित दिखाई गई है। इस प्रकार योग के क्रिया-पक्ष का आंकलन मुहरों पर मिलता है। इस सभ्यता के कुछ मुहरों पर स्वास्तिक चिह्न भी मिलता है। सरस्वती-सिन्धु सभ्यता में अंत्येष्टि संस्कार की तीन विधियाँ प्रचलित थी :

1. पूर्ण समाधिकरण
2. आंशिक समाधिकरण
3. दाह संस्कार।

समाधि क्षेत्र नगरों से बाहर होते थे जिसके प्रमाण फरमाना, राखीगढ़ी व अन्य पुरास्थलों से मिले हैं। शवों का सिर प्रायः उत्तर की ओर तथा पैर दक्षिण दिशा की ओर होते थे। कंकालों के साथ मिट्टी के बर्तन, आभूषण, उपकरण आदि रखे जाते थे।

चित्र 23: योग मुद्रा

पतन के कारण

सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के विघटन के एक नहीं बल्कि अनेक कारण उत्तरदायी रहे होंगे। इन प्रमुख कारणों का विवरण निम्न प्रकार से है :

1. **प्रशासनिक शिथिलता :** सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के अन्तिम चरण में प्रशासन में शिथिलता आ गई थी। जिसके कारण बस्ती का आकार सीमित हो गया और स्वच्छता में कमी आई। सड़कों और गलियों में अतिक्रमण होने लगा। दीवारें कम चौड़ी बनने लगी और नए मकानों के निर्माण में पुराने मकानों की ईटों का प्रयोग होने लगा जिसके कारण यह नगरीय सभ्यता धीरे-धीरे ग्रामीण संस्कृति में परिवर्तित हो गई।
2. **जलवायु परिवर्तन :** सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के पतन के लिए जलवायु परिवर्तन को भी उत्तरदायी माना जा सकता है। वर्षा कम होने के कारण तथा सरस्वती नदी सूख जाने के कारण हरियाणा, राजस्थान और पंजाब में इस सभ्यता की बस्तियों का विनाश हुआ होगा।

3. **बाढ़ :** मोहनजोदड़ो, चान्हुदड़ो, लोथल और भगतराव के उत्खनन से बाढ़ के प्रमाण मिले हैं। जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि इस सभ्यता के पतन में बाढ़ की भी भूमिका रही होगी।
4. **विदेशी व्यापार में गतिरोध :** सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के विदेशी व्यापार में कमी आने के कारण आर्थिक ढांचा कमजोर होने लगा जिसके कारण बहुमूल्य वस्तुओं की जगह स्थानीय उत्पादन की मांग बढ़ने लगी और लोगों के जीवन स्तर में भारी गिरावट आई। जो इस सभ्यता के पतन का मुख्य कारण बनी।
5. **महामारी :** मोहनजोदड़ो से प्राप्त 42 मानव-कंकालों के अध्ययन से पता चला है कि इनमें से 41 लोगों की मौत मलेरिया जैसी महामारी से हुई है। जिससे अनुमान लगाया जाता है कि महामारी के कारण भी इस सभ्यता का पतन हुआ होगा।

आओ फिर से याद करें

1. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की नगर योजना की प्रमुख विशेषताएं क्या थी?
2. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के लोगों के सामाजिक और धार्मिक जीवन कैसा था?
3. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की आर्थिक संरचना कैसी थी?
4. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की कलात्मक विशेषताएं क्या थी?

आइए विचार करें

1. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के विस्तार और कालक्रम के बारे में विचार करें।
2. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के पतन के कारणों के बारे में विस्तार से चर्चा करें।
3. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता की विश्व को क्या-क्या देन है?

आइए करके देखें

1. सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के व्यापारिक केन्द्रों की सूची बनाएं।
2. हरियाणा में सरस्वती-सिन्धु सभ्यता के स्थलों की सूची बनाएं।

© SCERT Bhiwani Not to be Reprinted

अध्याय - 2

प्राचीन विश्व की प्रमुख सभ्यताएँ

मानव व उसकी सभ्यता का उद्‌भव एवं विकास एक रोचक कहानी है। इन सभ्यताओं का बहुत बड़ा भाग अतीत के घने कोहरे में छिपा है। इसको समझने का प्रयास निरन्तर जारी है। ये सभ्यताएँ विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग समय में विकसित हुई। जब व्यक्ति स्थायी रूप से रहना शुरू करता है तब व्यवस्थित जीवन बिताने के प्रयास में उसके चारों ओर एक सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एंव आर्थिक व्यवस्था का निर्माण शुरु हो जाता है। यही व्यवस्था सभ्यता का निर्माण करती है। जिन सभ्यताओं की जानकारी आज तक प्राप्त हुई है, उन सभ्यताओं का वर्णन निम्न प्रकार से है :

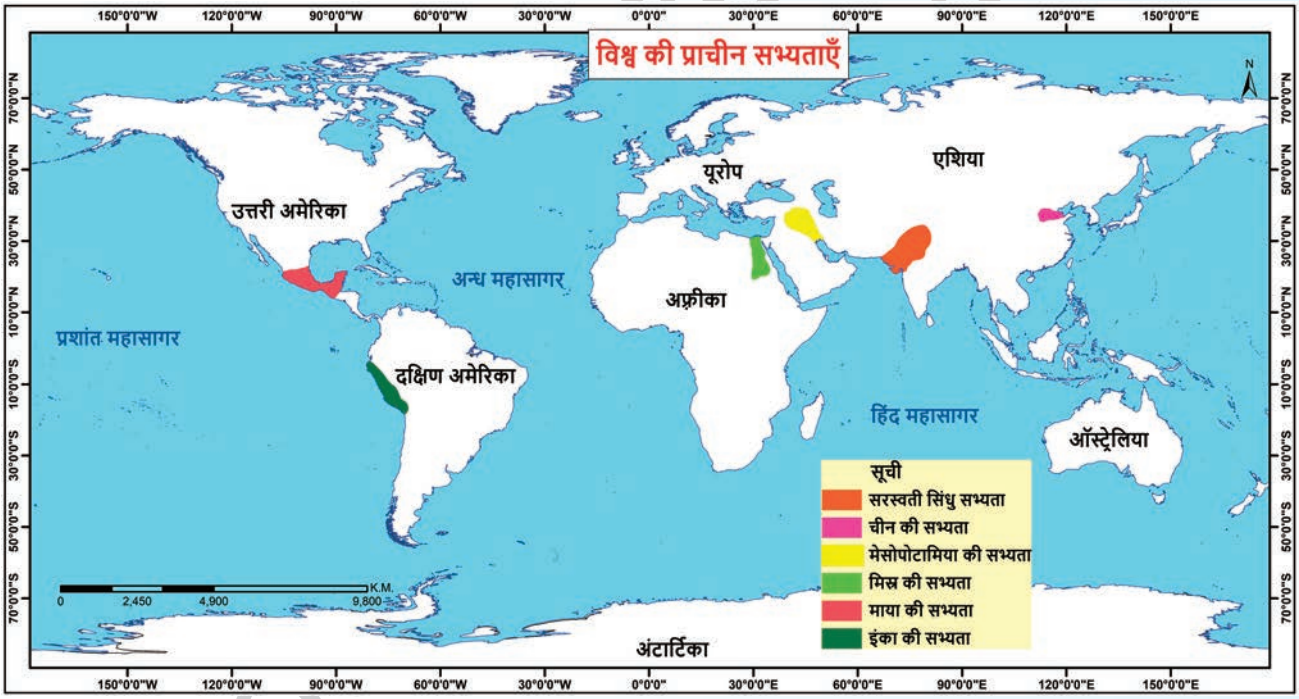

मानचित्र विश्व की प्राचीन सभ्यताएं

मिस्र की सभ्यता

मिस्र की सभ्यता का विकास लगभग सात हजार वर्ष पूर्व हो गया था। प्राचीनकाल में मिस्र छोटे-छोटे राज्यों में बंटा हुआ था। लगभग 4000 ई. पूर्व में ये राज्य संयुक्त होकर दो राज्यों में संगठित हो गये। पहला, उत्तर मिस्र अथवा नील नदी के मुहाने का राज्य और दूसरा दक्षिण मिस्र अथवा नील नदी की घाटी का राज्य। उत्तर मिस्र की राजधानी 'बूटो' व राजचिह्न 'मधुमक्खी' था। दक्षिण मिस्र की राजधानी 'तैखेबे' व राजचिह्न 'पेपाइरस का

गुच्छा' था। मेना या मिनिस नामक राजा ने 3400 ई. पूर्व में इन दोनों राज्यों को मिलाकर सम्पूर्ण मिस्र को अपने अधीन कर लिया। मेना एक सफल विजेता और महान सेनानायक था। उसने मेम्फिस को मिस्र की राजधानी बनाया और वहां राजतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था स्थापित की। इसी ने मिस्र के प्रथम राजवंश की स्थापना की।

चित्र 1: मिस्र का पिरामिड

गतिविधि : जानने का प्रयास करें कि नील नदी ने किस प्रकार मिस्र की सभ्यता का पालन पोषण किया?

क्या आप जानते है?

मिस्र के ज्ञान को दुनिया तक ले जाने में फ्रांस के शासक नेपोलियन बोनापार्ट ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

मिस्र का इतिहास जानने के साधन :

साहित्यिक साधन	:	हेरोडोटस, डायोडोटस, मेनेथो
पुरातात्त्विक साधन	:	पिरामिड, समाधियाँ (मस्तबे), भित्ति-चित्र, मंदिर, रोसेटा अभिलेख
आधुनिक साधन	:	एडोल्डफ इरमान व जे.एस. ब्रस्टेड की पुस्तकें।

राजनीति

मिस्र का राजा 'फराओ' कहलाता था। फराओ न्याय और ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। मिस्र के राजनीतिक इतिहास को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :

1. प्राचीन काल या पिरामिड युग (3400 ई. पू. से 2160 ई. पू.)
2. मध्यकाल या सामन्तवादी युग (2160 ई. पू. से 1580 ई. पू.)
3. नवीनकाल या साम्राज्यवादी युग (1580 ई. पू. से 650 ई. पू.)

1. पिरामिड युग : इस युग में छह राजवंशों ने शासन किया। इनमें प्रमुख शासक नरमेर, अट्टा, जोसर, इमहोटेप, खुफू, यूसरेकाफ, खाफ्रे आदि थे। इन फराओ ने विशाल पत्थरों के गगनचुम्बी पिरामिडों (त्रिभुजाकार समाधियाँ) का निर्माण करवाया। मिस्र की आधुनिक राजधानी काहिरा के दक्षिण में मेम्फिस नामक नगर के पास आज भी 70 पिरामिड मौजूद हैं। मिस्र में पिरामिडों को बनाने का श्रेय 'इमहोटेप' को जाता है जो तीसरे राजवंश के फराओ जोसर का वजीर था। इनकी रचना मिस्र के लोगों ने अपने राज्य और उसके प्रतीक फराओ की अनश्वरता एवं गौरव को अभिव्यक्त करने के लिए की थी। मिस्र के शासक सूर्य देवता को अपना इष्ट देवता मानते थे। अतः उन्होंने सूर्य को प्रसन्न करने के लिए विशाल पिरामिडों का निर्माण करवाया। पिरामिडों के निर्माण का उद्देश्य धार्मिक पवित्रता थी। लोगों को रोजगार देना भी इनका उद्देश्य रहा होगा। अपनी संस्कृति को दीर्घायु करने का भी उद्देश्य रहा होगा।

2. सामन्तवादी युग (2160 ई. पू. से 1580 ई. पू.) : सामन्तवादी युग में पांच राजवंशों ने शासन किया। इनमें प्रमुख शासक थे। इंटे, मेतुहोतेप, अमनहोतेप, सेनवो, सरेत आदि। इस युग में मिस्र अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया और राज्य शक्ति सामन्तों के हाथ में आ गई। सामन्तों की प्रतिस्पर्धा के कारण प्रत्येक जागीर का चहुंमुखी विकास हुआ। इस समय मकबरों का निर्माण हुआ और व्यापार तथा कृषि का भी विकास हुआ, जिसके

चित्र 2: गीजा का पिरामिड

चित्र 3: मिस्र की लिपि

क्या आप जानते है?

प्राचीन मिस्र के लोग यह जानते थे कि सूर्य का प्रकाश व उष्णता जीवन के लिए आवश्यक है। इसलिए वे सूर्य देवता 'रे', 'रा' को सृष्टि का कारण मानते थे।

©BSEH Bhiwani Not to be republished

फलस्वरूप उनके नगर सभ्यता के केन्द्र बन गए। ये सामन्त आपस में लड़ते रहते थे। चारों ओर अशान्ति तथा अराजकता व्याप्त थी। ऐसे में सीरिया के हिक्सास लोगों ने मिस्र पर अधिकार कर लिया। ये स्थानीय जनता का शोषण करने लगे, जिससे आम जनता को हिक्सास लोगों से घृणा हो गई और अन्त में थिब्स के सामन्त अमोसिस ने हिक्सास लोगों को मिस्र से मार भगाया और स्वयं शासन करने लगे। आने वाले वंशों के शासक कठपुतली थे।

3. साम्राज्यवादी युग (1580 ई. पू. से 650 ई. पू.) : इस युग का प्रारंभ अट्ठारहवें राजवंश के शासक अमेनहोटेप द्वारा सामन्तों की शक्ति को समाप्त करके सुसंगठित शासन-व्यवस्था की स्थापना से हुआ था। इस काल में जनता सुखी और समृद्ध थी। इस युग में कई राजवंशों ने शासन किया, इनमें प्रमुख थे- अमेनहोटेप द्वितीय, अहमोज प्रथम, थुटमोस प्रथम, अमेनहोटेप तृतीय, हातशोपसुत (महिला शासिका) आदि थे। जिन्होंने मिस्र को आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक ऊँचाइयों तक पहुँचाया। मिस्र में लगभग 31 राजवंशों ने 3100 वर्षों तक शासन किया। अंत में 332 ई. पू. में यूनान के शासक सिकन्दर ने मिस्र पर अधिकार कर लिया और सिकन्दर की मृत्यु के बाद मिस्र में टालेमी वंश का शासन स्थापित हो गया।

चित्र 4: मिस्र के मन्दिर

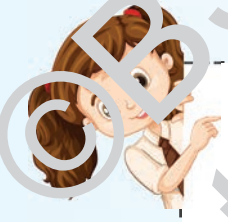

गतिविधि : मिस्र के प्रमुख पिरामिडों के नामों की सूची बनाएं।

प्रशासनिक व्यवस्था

1. **फराओ (राजा) :** फराओ को असीम अधिकार प्राप्त थे। वह निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक था। शासन की समस्त शक्तियाँ उसके हाथ में निहित थीं। फराओ को देवता माना जाता था।
2. **वजीर :** फराओ के बाद शासन में सबसे महत्वपूर्ण पद वजीर का था। वह शासन-संचालन के कार्य में फराओं की सहायता करता था। उसका मुख्य कार्य लगान वसूल करना एवं आय-व्यय का हिसाब रखना था।

©BSEH, Bhiwani Not to be republished

3. **सैन्य संगठन :** प्रारम्भ में मिस्र के फराओ के पास स्थायी सेना नहीं थी। फराओ का सैन्य संगठन सामन्तवादी प्रथा पर आधारित था। बाद में बारहवें राजवंश के समय फराओ ने स्थायी सेना की व्यवस्था की।

4. **परिषद् :** फराओ के दरबार में वृद्ध दरबारियों की एक अलग परिषद् थी, जिसे सारू कहते थे। सारू फराओ को परामर्श देती थी।

5. **प्रान्तीय शासन :** फराओ ने शासन की सुविधा की दृष्टि से साम्राज्य को कई प्रान्तों में विभक्त कर रखा था। प्रत्येक प्रान्त को नोम तथा उसके शासक को नोमार्क कहते थे। नोमार्क की नियुक्ति फराओ द्वारा की जाती थी।

6. **स्थानीय शासन :** गांवों का शासन-प्रबंध सामन्तों के हाथ में था, जिन्हें पुलिस तथा न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे। नगरों में एक प्रशासनिक अधिकारी होता था जो शांति बनाए रखना, राजस्व कर वसूल करना आदि कार्य करता था।

7. **न्याय-व्यवस्था :** फराओ प्रमुख न्यायधीश होता था। मुकद्दमा लिखित रूप में चलाया जाता था। फराओ मुकद्दमे का फैसला तीन दिन में कर देता था। अपराधी को कठोर सजा दी जाती थी, जैसे- डण्डे से पीटना, अंग-भंग करना, देश निकाला देना।

अर्थव्यवस्था एवं वाणिज्य

1. **कृषि :** मिस्र एक कृषि-प्रधान देश था। यहाँ की मुख्य उपज गेहूँ, जौ, कपास, सण और फलों में अंगूर, अंजीर एवं खजूर आदि थे। फराओ कृषि की ओर विशेष ध्यान देते थे। सिंचाई का समुचित प्रबन्ध करते थे।

2. **पशुपालन :** मिस्र के लोग पशुओं को पालते थे। वे गाय, भेड़, गधा, बछड़ा, बन्दर और मुर्गी आदि पालते थे।

3. **उद्योग-धन्धे :** मिस्रवासी अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धों में प्रवीण थे। वे पत्थर काटने, गहने एवं बर्तन बनाने, तांबे तथा कांसे के हथियार बनाने एवं लकड़ी का फर्नीचर बनाने में कुशल थे। मिस्र के लोग नाव एवं जहाज के निर्माण में भी निपुण थे। मिट्टी के बर्तन बनाना तथा कपड़े बुनना वहाँ के महत्वपूर्ण उद्योग बन गये। वहाँ पेपिरस नामक घास के पौधों से कागज बनाया जाता था तथा विभिन्न तरह की चिकित्सक सामग्री भी बनाई जाती थी।

चित्र 5: मिस्र में कब्रों से प्राप्त धातु के बर्तन

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

4. **वाणिज्य और व्यापार :** मिस्र में वाणिज्य और व्यापार का भी बहुत विकास हुआ। वहाँ आन्तरिक व्यापार नील नदी के द्वारा होता था। मिस्र, भारत और अरब से मसाले, रंग, तेल, पाउडर और चन्दन मंगवाता था। पशुओं का भी लेन-देन किया जाता था।

संस्कृति एवं धर्म

मिस्रवासी बहुदेववादी थे और प्रकृति के विभिन्न रूपों की पूजा करते थे। मिस्र में कुल मिलाकर तीन हजार देवता थे। मिस्र का सबसे बड़ा देवता सूर्य था, जिसे रे, रा, होरस, एवं एमन आदि कई नामों से पुकारा जाता था। सूर्य के बाद नील नदी के देवता 'ओसिरिस' का प्राधान्य था। मिस्रवासी नूत (आकाश का देवता) तथा सिन (चन्द्रमा) की भी उपासना करते थे। फराओ एवं सामंतों के मरणोपरांत उन्हें ऊँचे-ऊँचे मकबरों में रासायनिक लेप करके कब्र में रख देते थे। इससे मृत शरीर खराब नहीं होता था। इन्हें 'ममी' कहा जाता था। इन मकबरों को पिरामिड कहा जाता है।

चित्र 6: मिस्र से प्राप्त ममी

गतिविधि : मिस्र के प्रमुख देवी-देवताओं व भारत के प्रमुख देवी-देवताओं की सूची बनाकर तुलना करें।

उपयोगी शब्द
फराओ, पिरामिड, नोम, ममी, मैंम्फिस

मिस्र की सभ्यता की संसार को देन :

1. मिस्र ने विश्व को 365 दिन का एक वर्ष तथा कलेण्डर प्रदान किया।
2. सूर्य घड़ी व जल घड़ी का आविष्कार किया।
3. औषधि विज्ञान के क्षेत्र में अनेक खोजें की। उन्होंने ऐसा रासायनिक लेप तैयार किया जिससे मृतक शरीर को शताब्दियों तक सुरक्षित रखा जा सकता था।
4. मिस्र की एक सूची में विभिन्न बीमारियों से संबंधित 600 दवाइयों के नामों का उल्लेख मिलता है।
5. एकेश्वरवाद के सिद्धांत का प्रचलन किया।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

आओ फिर से याद करें :

1. मिस्र के इतिहास को जानने के साधन कौन-कौन से हैं?
2. मिस्र के इतिहास को कितने भागों में बांटा जा सकता है?
3. मिस्र के लोगों की आर्थिक गतिविधियाँ कौन-कौन सी थी?

विस्तार से विवरण दें :

1. मिस्र की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालें।
2. मिस्र की संसार को क्या देन है?

आओ करके देखें :

1. मिस्र के प्राचीन नगरों एवं आधुनिक नगरों की सूची बनाकर उनकी तुलना करें।
2. मिस्र के मानचित्र पर वहां के व्यापारिक नगर अंकित करें।

मेसोपोटामिया की सभ्यता

फारस की खाड़ी के उत्तर में स्थित आधुनिक ईराक को प्राचीन काल में मेसोपोटामिया कहते थे। यह यूनानी भाषा का शब्द है। यह दो शब्दों 'मेसो' और 'पोटम' से मिलकर बना है। 'मेसो' का अर्थ मध्य तथा 'पोटम' का अर्थ नदी होता है। इस प्रकार मेसोपोटामिया का शाब्दिक अर्थ दो नदियों के बीच का भाग होता है। ये दो नदियाँ दजला व फरात हैं। मेसोपोटामिया में सुमेरियन, बेबीलोनियन, असीरियन सभ्यताओं का विकास हुआ था। इन सभ्यताओं के बारे में कहा जाता है कि सुमेरिया ने सभ्यता को जन्म दिया, बेबीलोन ने उसे चरम सीमा पर पहुँचाया और असीरिया ने इसे ग्रहण करके प्रगति की। इन सभ्यताओं का वर्णन इस प्रकार है :

चित्र 7: मेसोपोटामिया की मोहर

मेसोपोटामिया की सभ्यताओं को जानने के साधन :

- बेहिस्तून अभिलेख।
- रोसेटा अभिलेख।
- सूसा अभिलेख।
- धार्मिक साहित्य।
- उर, एरिडु, लगाश, निप्पुर आदि नगरों की खुदाइयों से मिलने वाली सामग्री।
- मिट्टी की पट्टिकाओं पर खुदे लेख, जिगुरात।
- हम्मूराबी की संहिता।

©BSEH, Bhiwani Not to be reprinted

1. सुमेरिया की सभ्यता : 4500 ई. पू. फारस की सुमेरियन जाति के लोगों ने मेसोपोटामिया पर आक्रमण किया और यहाँ की अक्काद, बेबीलोन, एलम एवं मूसा आदि जातियों को पराजित कर यहाँ पर अपना अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् यहाँ छोटे-छोटे नगर राज्य स्थापित हुए। धीरे-धीरे यहाँ सभ्यता का विकास हुआ। सुमेरिया में उस समय उर, निपुर, लगाश, उरूक आदि नगर राज्य थे, जो एक दूसरे से स्वतंत्र थे। प्रत्येक नगर का अपना देवता था। नगर-राज्य के स्वतंत्र शासक को 'पटेसी' कहते थे। पटेसी के मुख्य कार्य थे- भूमि कर वसूल करना, बाहरी आक्रमणों से नगर की रक्षा करना, जनता के मुकद्दमों पर निर्णय देना आदि। सुमेरिया के लोगों ने एक लिपि का आविष्कार किया जिसे 'कीलाक्षर लिपि' कहा जाता है।

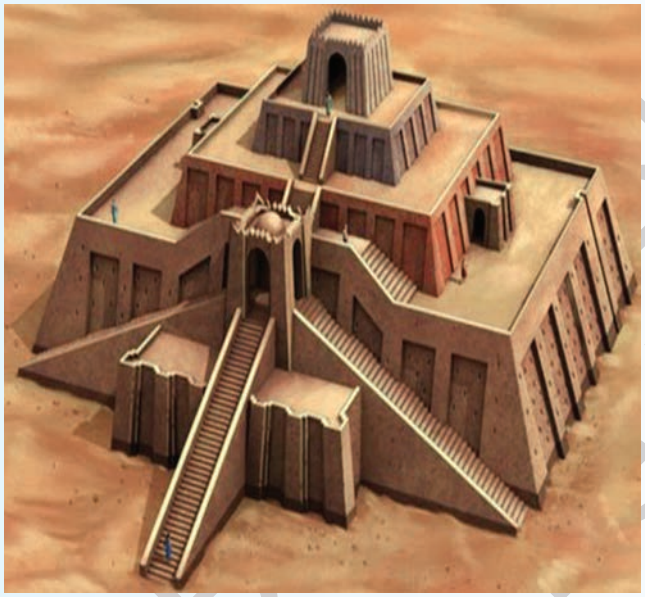

चित्र 8: जिगुरात

चित्र 9: कीलाक्षर लिपि

गतिविधि : यह जानने का प्रयास करें कि दजला व फरात नदियों ने किस प्रकार प्राचीन ईराक में सभ्यताओं का पालन पोषण किया।

क्या आप जानते हैं?

सुमेर के नगरों में पिरामिड के आकार में बनाए जाने वाले ऊँचे मंदिरों को जिगुरात कहा जाता है। बेबीलोन का जिगुरात 300 फुट लम्बा, 300 फुट चौड़ा व 300 फुट ऊँचा था।

2. बेबीलोनिया की सभ्यता : मेसोपोटामिया के दक्षिणी भाग में हेमराइट नदी के किनारे बेबीलोनिया की सभ्यता का विकास हुआ। 2200 ई. पू. में सेमेटिक लोगों की एक शाखा एमराइट ने सुमेर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। लगभग सौ वर्षों के निरन्तर संघर्ष व युद्धों के बाद इस जाति के महान् राजा हम्मूराबी ने सम्पूर्ण मेसोपोटामिया पर अधिकार करके साम्राज्य को राजनीतिक एकता में बांधा। उन्होंने बेबीलोन को राजधानी बनाया व एक विधिसंहिता भी बनाई। उसने अपने साम्राज्य को प्रगति की चरम सीमा तक पहुँचा दिया। यहाँ के प्रमुख शासक थे–निसि, अम्मी जादूगा, नेबुचडरेन्नर, गंदाश केस्साइट, शंशीअदाद, नवोपोलासर आदि। उन्होंने 536 ई. पू. तक शासन किया।

सेमेटिक : मध्य पूर्व की तरफ से आने वाली व सामी भाषा बोलने वाली जाति।

गतिविधि : मेसोपोटामिया के प्राचीन नगरों एवं ईराक के आधुनिक नगरों की सूची बनाकर तुलना करें।

3. असीरिया की सभ्यता : सेमेटिक लोगों ने दजला नदी के ऊपरी तट पर अधिकार करके अशुर नगर बसाया। इस नगर के नाम पर ही यह सभ्यता असीरिया की सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध हुई। सेमेटिक लोग ने 700 वर्षों तक यहाँ पर शासन किया। यहाँ का प्रथम शक्तिशाली राजा तिगलथ पिलेसर प्रथम था। अन्य प्रमुख शासक थे–सारगन द्वितीय, सेनोचरिब, एसारहद्दन आदि। अशुर बनिपाल असीरिया का अन्तिम प्रतापी और प्रसिद्ध शासक था। उनका साम्राज्य बेबीलोन, मीडिया, फिनिशिया, सुमेरिया तथा एलम तक फैला हुआ था। अशुर बनिपाल के समय में व्यापार, शिक्षा और कला आदि क्षेत्रों में असाधारण उन्नति हुई। उसने अपनी राजधानी निन्वेह में भव्य महलों तथा मन्दिरों का निर्माण करवाया। उसकी मृत्यु के पश्चात् असीरिया का साम्राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया एवं 612 ई. पू. में चेल्डियों ने इस पर अधिकार कर लिया। असीरिया में राजा सेना का सर्वोच्च नायक होता था। उसके पश्चात् लिम्मू या तुर्तान नामक पदाधिकारी सेनाध्यक्ष होते थे।

असीरिया के सम्राट स्थापत्य कला के प्रेमी थे। उन्होंने निन्वेह तथा असुर में भव्य प्रासादों, मन्दिरों तथा पुस्तकालयों का निर्माण करवाया था। असीरिया का प्रत्येक राजा पुराने महल को त्यागकर अपने लिए नवीन महल का निर्माण करवाता था। असीरियन सम्राटों ने निरंकुश नीति के आधार पर 150 वर्षों तक शासन किया।

©BSEH Bhiwani Not to be Printed

प्रशासनिक व्यवस्था : मेसोपोटामिया सभ्यता की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था सामान्यत: एक जैसी रही है। शासक निरंकुश होते थे तथा साम्राज्य में उनका पूर्ण नियंत्रण होता था लेकिन यहाँ शुरुआती दौर में प्रजातांत्रिक व्यवस्था थी जो बाद में राजतंत्र के रूप में स्थापित हो गई। वे दैविक सिद्धांत के आधार पर शासन करते थे। वे सर्वोच्च सेनापति, न्यायाधीश व सर्वोच्च पदाधिकारी होते थे। विभिन्न सभ्यताओं में शासक को अलग-अलग नामों से जाना जाता था। वे शासन के संचालन की सुविधा की दृष्टि से अपने साम्राज्य को कई प्रांतों में बांट देते थे। प्रान्त के गवर्नर का चयन स्वयं करते थे। गवर्नर अपने प्रांत से कर इकट्ठा करने, शांति बनाए रखने, युद्ध में शासक का सहयोग करने का कार्य करते थे।

सामाजिक जीवन : उस समय का समाज तीन वर्गों उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग में विभक्त था। उच्च वर्ग में राजा, उच्च पदाधिकारी व पुरोहित आदि आते थे। मध्यम वर्ग में सामंत और व्यापारी आदि आते थे। निम्न वर्ग में दास तथा किसान सम्मिलित थे। समाज में नैतिकता के आदर्श बहुत ऊँचे थे। समाज में स्त्रियों की दशा सामान्य थी। नैतिकता उनके लिए जरूरी थी।

धार्मिक जीवन : मेसोपोटामिया के लोग बहुदेववादी थे। प्रत्येक नगर के अपने अलग-अलग देवता थे। ये खेत, नदियों, पहाड़ों की भी पूजा करते थे। इनके प्रमुख देवता अनु (आकाश का देवता), की (पृथ्वी), सिन (चन्द्रमा), तम्मुज (वनस्पति और कृषि का देवता), ईश्तर (प्रेम की देवी), नरगल (प्लेग का देवता) आदि थे। इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी। विभिन्न देवी-देवताओं के मन्दिर बनाए गए थे।

आर्थिक जीवन : लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। इसमें गेहूँ, जौ, जैतून, कपास व अंगूर आदि की खेती की जाती थी। उस समय उद्योग एवं व्यापार भी उन्नत थे। उद्योग एवं व्यापार में संघ बने हुए थे। विनिमय सोना, चांदी और तांबे के टुकड़ों से होता था। यहाँ पशुओं में ऊँट और बकरी विशेष थी। यहाँ लकड़ी पर सुन्दर नक्काशी करके विभिन्न तरह के सामान बनाए जाते थे। इसके अतिरिक्त सोना-चांदी व कीमती पत्थर पर भी नक्काशी की जाती थी।

आओ फिर से याद करें :

1. मेसोपोटामिया का अर्थ क्या है?
2. मेसोपोटामिया क्षेत्र में विकसित होने वाली विभिन्न सभ्यता कौन-कौन सी थी?
3. जिगुरात क्या होते हैं?

उपयोगी शब्द
मेसोपोटामिया, जिगुरात, हम्मूराबी, लिम्मू, दास

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

विस्तार से विवरण दें :

1. मेसोपोटामिया सभ्यता के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन का वर्णन करें।

आओ करके देखें :

1. प्राचीन मेसोपोटामिया के विभिन्न देवी-देवताओं की सूची बनाकर उनकी तुलना मिस्र व भारत के देवी-देवताओं से करें।
2. मेसोपोटामिया के प्राचीन नगरों को विश्व के मानचित्र पर दर्शाएं।

यूनानी सभ्यता

यूरोप के दक्षिण-पूर्व में स्थित यूनान एक प्रायद्वीप है। यह तीन तरफ से समुद्र से घिरा हुआ है। इसमें 502 टापू हैं जिनमें क्रीट, ट्राय, साइप्रस, एथेन्स, मैसीडोन और स्पार्टा आदि मुख्य हैं। इस द्वीप पर लगभग 4000 ई.पू. में एक सभ्यता का उदय एवं विकास हुआ जिसे क्रीट की सभ्यता कहते हैं यह सभ्यता 1500 ई.पू. तक बनी रही। नौंसस तथा फीस्टस ट्राय इस सभ्यता के गढ़ थे। क्रीट की सभ्यता के पतन के पश्चात माइसिन नामक नगर में माईसिनियन सभ्यता का उदय हुआ जो 1200 ई.पू. तक चली। 1200 ई.पू. में आर्यन कबिलों ने यूनान पर अधिकार करके विभिन्न नगर राज्यों में विकसित सभ्यताओं को जन्म दिया। ये छोटे-छोटे नगर राज्य प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित थे। इन नगर राज्यों को 'पोलिस' भी कहते थे। प्रत्येक नगर की अपनी अलग सेना और सरकार थी। ये नगर राज्य आपस में लड़ते रहते थे। इस सभ्यता के राजनीतिक इतिहास को निम्नलिखित तीन भागों में विभक्ति किया जा सकता है :

1. अन्धकार युग या होमर युग (1200 ई.पू. से 800 ई.पू.)
2. लौह युग या नगर राज्य युग (800 ई.पू. से 500 ई.पू.)
3. हैलेनिस्टिक युग (500 ई.पू. से 200 ई.पू.)

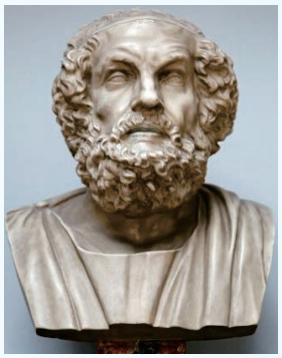

चित्र 10: होमर

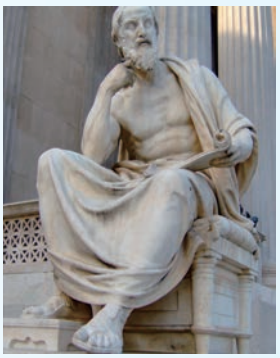

चित्र 11: हरोडोटस

यूनान की सभ्यता को जानने के साधन :

- ❑ होमर द्वारा रचित महाकाव्य इलियड व ओडिसी।
- ❑ हेरोडोटस की रचना हिस्टोरिका।
- ❑ एथेंस, कोरिंथ, स्पार्टा, थीब्स आदि नगरों की खुदाइयों से मिलने वाली सामग्री।
- ❑ थ्यूसीडाइडीज की रचना पेलोपोनेशियन युद्ध।
- ❑ प्लेटो एवं अरस्तु की रचनाएं।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

1. **प्रशासनिक एवं राजनीतिक व्यवस्था :** इस समय यहाँ विभिन्न राजवंशों के शासकों ने शासन किया। राजा निरंकुश होते थे। कई बार प्रजातांत्रिक भी होते थे। राजा को प्रजा ईश्वरतुल्य मानती थी। राजा एक परिषद् के परामर्श से शासन का संचालन करता था। परिषद में उच्च वर्ग के सम्मानित व्यक्ति होते थे। इस परिषद् का नाम 'ब्यूल' था। जनसाधारण की आमसभा को 'एगोरा' कहते थे। इस आमसभा में समस्त स्वतंत्र नागरिक भाग लेते थे। सिकन्दर का समय विश्व इतिहास में 'हेलेनिस्टिक युग' के नाम से प्रसिद्ध है। सिकन्दर ने 336 ई.पू. में अपने पिता फिलिप का वध कर दिया और मकदूनिया (मेसीडोनिया) का शासक बन गया। उसने यूनान में हुए विद्रोहों को कुचल दिया और समस्त यूनान पर अपना अधिकार कर लिया। यूनान में उस समय लगभग 150 नगर राज्य थे। प्रत्येक राज्य में तीन प्रकार के नागरिक होते थे- 1. स्वतंत्र नागरिक 2. विदेशी नागरिक 3. दास। स्वतंत्र नागरिकों को मौलिक अधिकार प्राप्त थे। यूनान के नागरिकों द्वारा जनसभा (एक्सलेशिया) के सदस्यों का चुनाव किया जाता था।

चित्र 12: यूनान का भवन

गतिविधि : यूनान के प्राचीन नगरों की सूची बनाएं।

2. **सामाजिक व्यवस्था :** समाज चार वर्गों में विभाजित था। प्रथम कुलीन वर्ग। यह वर्ग विशाल भू-सम्पत्ति का स्वामी था तथा इसके पास बहुत बड़ी संख्या में दास थे। यह वर्ग युद्ध के समय नेतृत्व करता था। दूसरा मध्य वर्ग था जिसमें साधारण नागरिक शामिल थे, इन्हें फ्रीमैन अथवा परोआसी कहा जाता था। यह वर्ग व्यापार एवं वाणिज्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। तीसरा वर्ग स्वतंत्र श्रमिकों का था, जिसे 'थीट्स' कहा जाता था। चौथा वर्ग दासों का था, जिन्हें 'हलोट' कहा जाता था। धार्मिक विश्वासों तथा सामाजिक प्रथाओं का समाज में प्रचलन था ।

3. **आर्थिक एवं वाणिज्यिक व्यवस्था :** यूनान आर्थिक दृष्टि से समृद्ध था। यूनान का व्यापार दूर-दूर तक होता था। इन लोगों के उद्योग मिट्टी व धातु के बर्तन बनाना, अस्त्र-शस्त्र बनाना, फर्नीचर बनाना, जैतून से तेल बनाना एवं अंगूर से शराब बनाना आदि प्रमुख थे। यूनान के पहाड़ों में सोना, चांदी व लोहा निकलता था। यहाँ कृषि पर ध्यान नहीं दिया जाता था।

© BSEH, Bhiwani Not to be Republished

4. धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन : यूनान के लोग बहुदेववादी थे और मूर्तिपूजक भी। ये लोग प्राकृतिक शक्तियों तथा जानवरों की भी पूजा करते थे। उनका भूत-प्रेत में भी विश्वास था। इनके मुख्य देवी-देवता जियस (आकाश का देवता), अपोलो (सूर्य), हर्मस (व्यापार का देवता), पोसीडॉन (समुद्र का देवता), मार्स (युद्ध का देवता), डेमीटर (अन्न की देवी) आदि थे। यहाँ के लोग विभिन्न तरह के मनोरंजन के साधनों में विश्वास रखते थे: नाचना, गाना, पशुओं की लड़ाई करवाना आदि। यूनानी संस्कृति ने निश्चय ही विश्व को अमूल्य देन दी है। यूनानियों ने कई भव्य मन्दिरों, आकर्षक तथा विशाल मूर्तियों का निर्माण करवाया।

यूरोप के प्रथम इतिहासकार हेरोडोटस को प्रसिद्ध यूनानी शासक पेरिक्लीज के दरबार में संरक्षण प्राप्त था।

उपयोगी शब्द
होमर, एगोरा, ब्यूल, परोआसी, हैलोट, थीट्स

आओ फिर से याद करें :

1. यूनान के इतिहास को राजनीतिक दृष्टि से कितने कालों में बांटा जा सकता है?
2. ब्यूल व एगोरा का अर्थ क्या है?

विस्तार से विवरण दें :

1. यूनानी सभ्यता के धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक जीवन की विशेताएं बताएं।

आओ करके देखें :

1. विश्व के मानचित्र पर यूनानी नगर दर्शाएं।
2. यूनानी देवी-देवताओं की सूची बनाकर उनकी तुलना समकालीन सभ्यताओं के देवी-देवताओं से करें।

रोमन सभ्यता

1000 ई.पू. के लगभग रोम एक छोटा-सा गाँव था, जो मध्य इटली में टाइबर नदी के किनारे सात पहाड़ियों पर बसा हुआ था। इसलिए इसे 'सात पहाड़ियों का नगर' भी कहा जाता था। आठवीं सदी ई.पू. में यह नगर राज्य बना और बाद में नगर राज्य से यह एक विशाल साम्राज्य बना। एट्रुस्कन जाति ने रोम की सभ्यता के विकास और प्रसार में महत्वपूर्ण योग दिया। इस जाति के लोगों ने विशाल भवनों का निर्माण करवाया और यहाँ अनेक नगरों

©BSEH Not to be Reprinted

की स्थापना की। इटलीवासियों ने वर्णमाला, कला, युद्ध तथा अस्त्र-शस्त्र आदि का ज्ञान भी इसी जाति से सीखा। 500 ई.पू. में रोम के लैटिन आर्यों ने एट्रुस्कन जाति को परास्त किया और रोम पर अपना अधिकार जमा लिया। इसके पश्चात् रोम निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होता रहा। रोमुलस रोम का प्रथम सम्राट बना। रोमन सभ्यता का राजनीतिक इतिहास निम्नलिखित चार भागों में बांटा जाता है:

1. राजतंत्र काल (753 ई.पू.- 509 ई.पू.)
2. गणतंत्र काल (509 ई.पू.- 133 ई.पू.)
3. सैनिक अधिनायकों का काल (133 ई.पू.- 27 ई.पू.)
4. साम्राज्यवादी काल (27 ई.पू.- 476 ई. तक) में बांटा जाता है।

राजतंत्रकाल में राजा राज्य का अध्यक्ष होता था। उसके अधिकार असीमित थे। राजतंत्रकालीन समाज दो वर्गों में विभक्त था- पैट्रीशियन वर्ग एवं प्लेबियन वर्ग। पैट्रीशियन वर्ग में लैटिन लोग थे, जो रोम के ही वास्तविक निवासी थे। इस वर्ग में रोम के उच्च एवं कुलीन परिवार के व्यक्ति आते थे। दूसरा वर्ग प्लेबियनों का था, जिसमें स्वतंत्र दास, भूमिहीन और गरीब व्यक्ति आते थे, जिनको राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस युग में रोम में अनेक सड़क, नहर व पुल बने। रोम की सुरक्षा के लिए उसके चारों ओर एक दीवार का निर्माण करवाया गया। रोम में सुन्दर भवन और मंदिर बने।

आगस्टस का युग 31 ई.पू.-14 ई.पू. रोम का 'स्वर्णयुग' कहलाता है। उसका युग शान्ति और समृद्धि का युग था। उसके अधीन रोम ने विभिन्न क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति की। रोमन सभ्यता की उस समय की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

रोम की सभ्यता को जानने के साधन :

- 12 पट्टिकाओं पर लिखे लेख - ट्वेल्व टेबल्स।
- रोम के पुरोहितों द्वारा लकड़ी की तख्तियों पर लिखे लेख - एनल्स पोंटीफिकम।
- लिवि की रचनाएँ : पालिबियस व डिओडोरस के लेख।

चित्र 13: रोमन सिक्के

चित्र 14: रोमन देवता जुपिटर

©BSEH, Bhiwani not to be Reprinted

1. प्रशासनिक व्यवस्था : रोम में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था जनता द्वारा चुनी हुई सीनेट के हाथों में केन्द्रित थी। सीनेट के सदस्यों की संख्या 300 थी परन्तु ये सब सदस्य पैट्रीशियन वर्ग के होते थे। सीनेट द्वारा दो न्यायाधीश नियुक्त किए जाते थे, जिन्हें 'कौंसल' कहते थे। इनका कार्यकाल एक वर्ष का होता था। वे मुख्य न्यायाधीश, प्रमुख सेनापति तथा प्रशासक थे। कौंसल की सहायता के लिए एक वित्त अधिकारी होता था, जिसे क्वेस्टर्स कहते थे। इसके अतिरिक्त प्रशासन में सहायता देने के लिए तीन पदाधिकारी और होते थे–सेन्सर्स, कर वसूल करने वाला अधिकारी, एल्डीज, शान्ति व्यवस्था बनाए रखने वाला और प्रोटोर–न्यायाधीश इनकी नियुक्तियाँ एक वर्ष के लिए की जाती थी। प्रान्तों के शासन–प्रबन्ध का संचालन करने के लिए गवर्नर नियुक्त किए जाते थे। इनका कार्यकाल एक वर्ष का होता था। गवर्नरों को वेतन नहीं मिलने के कारण वे जनता से मनमाना कर वसूल करते थे। सीनेट द्वारा पारित किये गये कानून को एसेम्बली अस्वीकार नहीं कर सकती थी।

गतिविधि : रोम नगर के विकास की यात्रा का विवरण तैयार करें।

2. आर्थिक व्यवस्था : रोमन लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि एवं पशुपालन था। गेहूँ, जौ, बाजरा, अंगूर, जैतून, सेब आदि मुख्य फसलें थी। भूमि पर धनी पुरुषों का अधिकार था। रोम में व्यापार, वाणिज्य एवं उद्योग धन्धों का विकास अधिक विकसित नहीं था फिर भी यहाँ बर्तन उद्योग, वस्त्र उद्योग, सोना–चांदी के आभूषण आदि बनाने का कार्य किया जाता था। राज्यों को खानों और नमक उत्पादन से भी आमदनी होती थी। ये लोग भारत से मलमल, अफ्रीका से धातु, चीन से रेशम, यूनान से लोहे का व्यापार करते थे।

क्या आप जानते हैं?

रोम पहले एक नगर राज्य द्वारा फिर वह मध्य इटली के लैटिन प्रदेश में एक राज्य बना, इसके पश्चात इसमें समूची इटली का विलय हो गया तथा अंत में इसने एक विशाल साम्राज्य का रूप धारण कर लिया।

3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था : रोम के सामाजिक जीवन का मूल आधार परिवार था। परिवार संयुक्त होते थे। परिवार के सदस्यों को मुखिया की आज्ञा का पालन करना पड़ता था। रोम के निवासी प्रकृति के देवताओं की अपेक्षा आत्माओं की उपासना में अधिक विश्वास करते थे। उनके देवता इस प्रकार थे– जुपिटर (शांति का देवता), मार्स (युद्ध का देवता) और वीनस (प्रेम की देवी), वेस्टा (अग्नि देवता), अपोलो (संगीत व कला का देवता) आदि प्रसिद्ध थे। रोम की शासन–व्यवस्था की धुरी धार्मिक विचार ही थे।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

गणतंत्र काल में राज्य की वास्तविक शक्ति जनता के हाथों में थी। लेकिन प्लेबियन व दास वर्ग को किसी भी प्रकार का राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं था। प्लेबियन वर्ग इसके लिए निरंतर संघर्ष करते रहते थे।

क्या आप जानते हैं?

रोमन साम्राज्य में सड़कों का जाल बिछा हुआ था। ये सड़कें विश्व के सभी प्रमुख देशों/नगरों को रोम से जोड़ती थी। अतः यह लोकोक्ति उचित प्रतीत होती है कि "सभी सड़कें रोम को जाती हैं।"

उपयोगी शब्द

एट्रुस्कन, प्लेबियन, पैट्रशियन, कौंसल, क्वेस्टर्स

आओ फिर से याद करें :

1. रोम को सात पहाड़ियों का नगर क्यों कहा जाता है?
2. रोमन सभ्यता को राजनीतिक दृष्टि से कितने कालों में बांटा जा सकता है?
3. रोम की शासन व्यवस्था कैसी थी?

विस्तार से विवरण दें :

1. रोमन सभ्यता के प्रशासनिक, आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक जीवन का विवरण दें।

आओ करके देखें :

1. विश्व के मानचित्र पर रोमन साम्राज्य से जुड़े देशों को दर्शाएं।
2. रोमन सभ्यता के सामाजिक वर्गों की सूची बनाएं।
3. यूनानी देवी-देवताओं की सूची बनाकर उनकी तुलना समकालीन सभ्यताओं के देवी-देवताओं से करें।

चीन की सभ्यता

चीन की सभ्यता भी एक प्राचीन सभ्यता है। इस सभ्यता का विकास तीन हजार ई.पू. के आस-पास माना जाता है। इस सभ्यता का उदय सिक्यांग, ह्वांग ह्वो तथा वांग ह्वो, नदियों के आस-पास हुआ। इन नदियों में बाढ़ आने के कारण चीनी लोग इन्हें विपत्ति मानते थे परन्तु इन्हीं नदियों ने चीन की सभ्यता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। चीनी इतिहासकारों के अनुसार फू-सी चीन का पहला सम्राट था, जिसने 2852 ई.पू. से लेकर 2738 ई.पू. तक शासन किया। उसने चीनियों को घर बनाना, शिकार करना, जानवर पालना आदि कार्य सिखाकर चीनी सभ्यता की नींव डाली। चीन का दूसरा प्रमुख सम्राट था शेन-नुंग था। उसने चीनियों को खेती करना सिखाया।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

तीसरा सम्राट- हुआंग टी (पीला सम्राट) था। इसने महासम्राट की उपाधि धारण की और छोटे-छोटे भू-भागों में विभाजित चीन को संयुक्त बनाया तथा अपने साम्राज्य को उन्नति के शिखर तक पहुँचाया। इसके बाद यहाँ विभिन्न राजवंशों क्रमशः हासिया वंश, शांग वंश, चाऊ वंश, चिन वंश, हान वंश, तांग वंश, शुंग वंश ने शासन किया।

चीन की सभ्यता को जानने के साधन

- पौराणिक कथाएँ
- कन्फ्यूशियस द्वारा रचित भूचिंग व भीचिंग (काव्य संग्रह)
- पुरापाषाणिक अवशेष
- अस्थि अभिलेख
- मृदभाण्ड, ध्वनिबोधक चित्र

चित्र 15: चीनी दार्शनिक कन्फ्यूशियस

चित्र 16: चीनी पुरास्थलों से प्राप्त मानव अवशेष

1. शासन-व्यवस्था : राजा-चीन में राजा को 'वांग' कहा जाता था। वह सबसे बड़ा न्यायाधीश तथा पुरोहित होता था। वह स्वेच्छाचारी भी होता था। जनता उसे अपना पिता समझती थी और उसे ईश्वर पुत्र कहकर उसकी पूजा करती थी।

मंत्री परिषद् - वांग ने शासन-कार्य के लिए मंत्री परिषद् का गठन किया हुआ था। उसके अधीन चार मंत्री होते थे, जो राजा को प्रशासनिक कार्यों में परामर्श देते थे। इसके अतिरिक्त छह सदस्यों की कार्यकारिणी परिषद् भी थी। जैसे- लोकसेवा समिति, माल व वित्त समिति, संस्कार व उत्सव समिति, युद्ध व रक्षा समिति, दण्ड व न्याय समिति तथा सार्वजनिक हित समिति। चीन में सामान्यतः योग्य व्यक्तियों को ही सरकारी पदों पर नियुक्त किया जाता था।

गतिविधि : चीन के प्रमुख पुरास्थलों की एक सूची बनाएं।

प्रान्तीय शासन-व्यवस्था : दो या तीन 'हीन' (गांवों का समूह) का एक 'फू' बनता था जो प्रांत के समान होता था। प्रांतों को 'सैंग' भी कहा जाता था। यहाँ छोटे-छोटे गाँव और नगर थे, जिनकी शासन-व्यवस्था एक न्यायाधीश और एक राज्यपाल चलाता था। इनकी नियुक्ति सम्राट करता था।

2. आर्थिक दशा : कृषि एवं पशुपालन-चीनी लोगों का मुख्य कार्य कृषि और पशु पालन था। यहाँ बाजरा, चावल, गेहूँ तथा फलों की खेती होती थी। उपजाऊ भूमि पर नौ परिवार मिलकर सामूहिक रूप से खेती करते

©BSEH. Book Not to be Republished

थे। इस व्यवस्था को चिंगतियेन प्रणाली कहा जाता था।

उद्योग-धन्धे : चीन में उद्योग-धन्धों का आश्चर्यजनक रूप से विकास हुआ था। चीनियों का मुख्य व्यवसाय रेशम का उद्योग था। चीनियों का एक अन्य मुख्य व्यवसाय मछली पकड़ना भी था। चीन में लोग वंशानुगत व्यवसाय करते थे और इसे बदलना पाप समझते थे।

चित्र 17: चीनी भवन

व्यापार एवं वाणिज्य : चीन ने व्यापार के क्षेत्र में भी बहुत विकास किया। सम्राट शी हुआंग टी ने व्यापार के विकास के लिए चीन में सड़कों का जाल बिछा दिया। यहाँ व्यापारियों के संघ बने हुए थे जो विदेशों से ऊन, तम्बाकू, शीशा, कीमती पत्थर मंगवाते थे तथा चीनी मिट्टी के बर्तन बारूद व ताश विदेशों में भेजते थे।

क्या आप जानते हैं?

प्राचीन काल में चीन के लोग अपने अतिरिक्त किसी अन्य जाति को सभ्य नहीं समझते थे। वे अपने को ''स्वर्ग के नीचे स्थित राज्य (तिएन-शिया) कहते थे।''

3. सामाजिक व्यवस्था : चीनी समाज में शिष्टाचार और नम्रतापूर्ण व्यवहार को बहुत अधिक महत्व दिया जाता था। चीनियों के अनुसार संसार के निर्माता 'पानकू' ने समाज के चार वर्ग बनाए। प्रथम वर्ग मंदारिन का था। इसमें विद्वान, अध्यापक, उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति आते थे। दूसरा वर्ग किसानों का, तीसरा वर्ग कारीगरों का व चौथा वर्ग व्यापारियों का था। चीन में संयुक्त परिवार प्रणाली प्रचलित थी।

4. धार्मिक व्यवस्था : चीन के विद्वान एकेश्वरवादी तथा जनता बहुदेववादी थी। यहाँ प्रकृति की पूजा की जाती थी। जैसे-आकाश का देवता (यंग), वायु तथा पृथ्वी का देवता (चीन) मुख्य थे। चीनी लोग अंधविश्वासी भी थे। वे भूत-प्रेत, अपशकुन व जादू-टोने में विश्वास करते थे। चीन में कन्फ्यूशियस व लाओत्से प्रमुख दार्शनिक मत थे। जिसे चीनी लोग 'कुंग-जु' के नाम से भी पुकारते हैं। छठी शताब्दी ई.पू. में भारत से यहाँ बौद्ध धर्म का भी काफी प्रसार हुआ।

विस्तार से विवरण दें :

1. चीनी सभ्यता के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन की विशेषताओं का विवरण दीजिए।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

आओ फिर से याद करें :

1. चीनी सभ्यता के आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक इतिहास की विशेषताएं क्या थी?
2. चीनी सभ्यता की प्रान्तीय शासन व्यवस्था कैसी थी?

आओ करके देखें :

1. चीन की सभ्यता के उदय में भूमिका अदा करने वाले प्रमुख नदियों की सूची बनाएं एवं मानचित्र पर दर्शाएं।
2. कन्फ्यूशियस एवं बौद्ध धर्म की प्रमुख विशेषताओं की तुलना करें।

माया सभ्यता

उत्तर अमेरिका महाद्वीप के दक्षिण में 500 ई.पू. और 1000 ई. के बीच फली-फूली सभ्यता को 'माया सभ्यता' कहा जाता है। वैसे यह सभ्यता लगभग 4000 ई. पूर्व पुरानी है। । यह सभ्यता आधुनिक ग्वाटेमाला, बेलिजे, दक्षिण पूर्व मैक्सिको और होंडुरास तथा अल सेलवेडोर के पश्चिमी क्षेत्रों में फैली हुई थी। माया सभ्यता अपने आप में कोई साम्राज्य या एकीकृत राजनीतिक इकाई नहीं थी बल्कि बिखरे हुए बड़े-छोटे शहरों और गाँवों की एक सांस्कृतिक इकाई थी। यद्यपि इनमें से अधिकांश शहर या गाँव एक दूसरे से जुड़े थे। टीकल, कलकमुल, कोपान और पालेंके यहां के प्रमुख शासकीय राजवंश थे। इनकी प्रमुख विशेषताएँ - इनका भव्य स्थापत्य, ललित कला, लेखन कला, खगोल विज्ञान और कैलेंडर आदि हैं जो इन्हें विश्व की परिष्कृत और विकसित सभ्यताओं की पंक्ति में खड़ा कर देते हैं। घरों की दीवारें लकड़ी की हुआ करती थी और इनकी छतें ताड़ के पत्तों से बनाई जाती थी।

माया सभ्यता के इतिहास को जानने के साधन

- माया सभ्यता मे स्थित नगरों की खुदाइयों से मिलने वाले पुरावशेष, मिट्टी के बर्तन, नक्काशी, कलात्मक वस्तुएं व ग्लिफ।
- रासहीथर की रचना, प्राचीन माया: नया परिप्रेक्ष्य।
- माया किताबें या कोडिसिस।

चित्र 18: माया सभ्यता के भवन

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

1. राजनीतिक व्यवस्था : माया सभ्यता में राज्यों के मुखिया 'असली पुरुष' या 'हेलेक यूनिक' के नाम से जाने जाते थे। इनका पद अनुवांशिक था। हेलेक यूनिक राज्य के लौकिक तथा अलौकिक प्रतिनिधि माने जाते थे। इनके अधीन अन्य शहरों के सरदार थे जिन्हें 'बाताबोब' कहते थे। बाताबोब पर अपने शहर के शासन की देखरेख का जिम्मा था। इसके अतिरिक्त एक नगर परिषद् भी होती थी जिसमें शहर के विभिन्न उप-मंडलों के सरदार शामिल रहते थे। यद्यपि वे बाताबोब के अधीन थे परंतु बाताबोब के किसी भी कार्य पर रोक लगा सकते थे। जरूरत पड़ने पर बाताबोब सेना का नेतृत्व भी करते थे।

2. सांस्कृतिक एवं धार्मिक व्यवस्था : माया सभ्यता का पंचाग 3114 ई.पू. शुरू किया गया था। इस कैलेन्डर में हर 394 वर्ष के बाद बाकतुन नाम के एक काल का अंत माना जाता था। देवताओं के चित्र गचकारी मुखौटों से बनाए जाते थे व उनकी पूजा चबूतरों पर बने मन्दिरों में की जाती थी। देवताओं को शासक वर्ग अपने पूर्वज मानते थे। किसी भी कार्य को करने से पहले देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी। यहाँ पर भी नगर व राज्यों के अपने-अपने देवता थे।

क्या आप जानते हैं?

माया सभ्यता अपने आप में कोई साम्राज्य या राजनीतिक इकाई नहीं थी अपितु छोटे-छोटे गांवों, कस्बों एवं नगरों की सांस्कृतिक इकाई थी।

चित्र 19: माया सभ्यता का पंचांग

चित्र 20: यक्ष चीलान से प्राप्त लिंटल

गतिविधि : माया सभ्यता के क्षेत्र में पड़ने वाले उत्तरी अमेरिका के विभिन्न भागों की सूची बनाएं।

3. आर्थिक व्यवस्था : मायावासी कृषि एवं पशुपालन में विशेष ध्यान देते थे। यहाँ गेहूँ, जौ, चना, गन्ना, नारियल आदि फसलें उगाई जाती थीं। इनके साथ-साथ पशुपालन में गाय एवं बकरी विशेष पशु थे। माया सभ्यता में नाव, सूती वस्त्र व तांबे की घंटियाँ, तलवार व आभूषण बनाना प्रमुख कार्य थे। वे अपने बाताबोब एवं हेलेक यूनिक तथा अन्य धनी लोगों के लिए सुन्दर नक्काशीदार लकड़ी का प्रयोग करके घर बनाते थे। किसान व साधारण लोगों के घर कच्चे होते थे जिन्हें 'ना' कहा जाता था। मायावासियों ने चौड़ी सड़कें बनवाई हुई थी जो 'स्केब' या 'स्केबओब' के नाम से जानी जाती थी।

आओ फिर से याद करें :

1. माया सभ्यता किन क्षेत्रों में फैली हुई थी?
2. माया सभ्यता का श्रेष्ठ युग किसे माना जाता है?

आइए विचार करें :

1. माया सभ्यता के राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक जीवन की विशेषताओं का विवरण दीजिए।

आओ करके देखें :

1. अमेरिका के मानचित्र पर माया सभ्यता से जुड़े स्थान अंकित करें।
2. माया सभ्यता के पंचांग की सुमेरियन सभ्यता के पंचांग से तुलना करके देखें।

उपयोगी शब्द
हेलेक यूनिक, बाताबोब, बाकलुन, स्केबओब, ना

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

अध्याय - 3

विश्व के प्रमुख दर्शन

आओ जानें

पूर्व के अध्यायों में हम विश्व की प्रमुख सभ्यताओं का अध्ययन कर चुके हैं। इस अध्याय में हम विश्व के प्रमुख दर्शनों की चर्चा करेंगे:

* धर्म का अर्थ एवं लक्षण
* वैदिक दर्शन
* जैन दर्शन
* बौद्ध दर्शन
* पारसी दर्शन
* यहूदी दर्शन
* कनफ्यूशियस दर्शन

सभ्यता के प्रारंभ से ही 'दर्शन' विद्वान लोगों के बीच विशेष अभिरुचि का विषय रहा है। अपने चारों ओर हो रहे परिवर्तन व घटनाओं के बारे में सोचना, विचारना व चिंतन करना आदिकाल से ही मानव का स्वभाव रहा है। इस स्वाभाविक मानसिक प्रक्रिया से परमतत्त्व के यथार्थ स्वरूप की जाँच, जीवन सत्यों की खोज, जीवन की समस्याओं व उनके समाधान का विचार मनुष्य के मन में लगातार आता रहा है, मैं क्या हूँ? कहाँ से आया हूँ? आत्मा क्या है? जीव क्या है? आत्मा का शरीर से क्या संबंध है? मृत्यु के बाद कहाँ जाऊँगा? विचारों की इस प्रक्रिया ने धर्म, मजहब एवं पंथों को जन्म दिया और इसने मनुष्य के जीवन-दर्शन को विकसित करने में मदद की। दर्शन, सत्य एवं ज्ञान की खोज करता है। दर्शन के द्वारा कुछ तत्त्व व सिद्धांत प्रतिपादित होते हैं। दर्शन का जन्म अनुभव एवं परिस्थिति के अनुसार होता है। धर्म उनको क्रियान्वित करता है। सभी दर्शनों की उपासना पद्धतियाँ अलग-अलग हैं लेकिन सभी दर्शनों का एक ही लक्ष्य है और वह है दु:खों के मूल कारण से मानव को मुक्ति दिला कर उसे मोक्ष की प्राप्ति करवाना।

धर्म का अर्थ एवं लक्षण

वैदिक दर्शन में मनुष्य के जीवन को आध्यात्मिक व भौतिक दृष्टि से उन्नत करने के लिए चार पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की व्यवस्था का उल्लेख है। इन पुरुषार्थों में धर्म मुख्य है। किसी वस्तु के स्वाभाविक गुणों को उसका धर्म कहते हैं। जैसे अग्नि का धर्म गर्मी व तेज है, विद्यार्थी का धर्म पढ़ना, अध्यापक का धर्म पढ़ाना, राजा का धर्म प्रजा पालन व रक्षा करना तथा सूर्य का धर्म प्रकाश करना है। इसी प्रकार मानव का स्वाभाविक धर्म मानवता है। अत: धर्म का अर्थ है 'कर्तव्य बोध'। मनुष्य का नैतिक कर्तव्य ही उसका धर्म है। धर्म 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'धारण करना'। निरुक्त में 'नियम को' धर्म कहा गया है, अर्थात् जिस 'नियम' को इस संसार ने धारण किया है, वही धर्म है। धर्म वह अनुष्ठान है, जिससे चेतना का शुद्धिकरण होता है। शास्त्रों में धर्म के 10 लक्षण बताए हैं।

©BSEH Nirwani Not to be Reprinted

धर्म के 10 लक्षण

धृति	–	धैर्य
क्षमा	–	माफ करना
संयम	–	वासनाओं पर नियंत्रण
अस्तेय	–	चोरी न करना
शुचिता	–	अन्दर व बाहर की पवित्रता
इन्द्रिय निग्रह	–	इंद्रियों को वश में करना
धी	–	बुद्धिमता का सत्य प्रयोग
विद्या	–	ज्ञान की जिज्ञासा (सत्य, असत्य का ज्ञान)
सत्य	–	मन, कर्म, वचन से सत्य को धारण करना
अक्रोध	–	क्रोध न करना

पंथ : किसी व्यक्ति तथा उसके विचारों के इर्द-गिर्द विकसित एक रहस्यमयी पूजा पद्धति व कर्मकांड पंथ कहलाता है। इसमें व्यक्ति विशेष की भूमिका महत्वपूर्ण होती है उसके विचार ही परम सत्य मान लिए जाते हैं।

संप्रदाय अथवा रिलीजन : किसी विशिष्ट समुदाय के अनुयायियों का हित चाहने वाला समूह संप्रदाय अथवा रिलीजन कहलाता है। जैसे इस्लाम, ईसाईयत, शैव, वैष्णव आदि।

गतिविधि : कक्षा में धर्म, पंथ एवं संप्रदाय पर चर्चा करके इनके अंतर को समझें।

वैदिक दर्शन

वैदिक दर्शन सनातन है तथा विश्व के सबसे प्राचीन दर्शनों में प्रमुख है। भारतीय संस्कृति सबसे पुरानी है। वैदिक दर्शन भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। वैदिक दर्शन वह आचार संहिता है जिससे हम आदर्श जीवन जीने की कला सीखते हैं। वैदिक दर्शन में धर्म के स्वरूप को स्वीकार किया गया है। अतः वैदिक दर्शन को लोगों ने धर्म बना लिया।

सनातन : हमेशा बने रहने वाला सत्य जिसका न आदि है न अंत।

दर्शन : बौद्धिक एवं तार्किक चिंतन। दर्शन 'दृश' धातु से बना है। जिसका अर्थ है देखना, जानना साक्षात्कार करना। अपने चारों और होने वाली घटनाओं को जानकर बौद्धिक व तार्किक चिंतन करना (अर्थात् सही व गलत को जानना) दर्शन कहलाता है।

फिलॉसफी : ज्ञान से प्रेम। फिलॉसफी का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति है न कि जीवन सुधार।

1. वैदिक दर्शन के मुख्य स्रोत : वैदिक दर्शन वेदों की प्रमाणिकता को मानता है तथा वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। इसमें वेद, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक और उपनिषद मुख्य हैं।

2. वेद : वेद संसार का प्राचीनतम, प्रामाणिक, पवित्र एवं दार्शनिक साहित्य है। वैदिक दर्शन का मूल आधार वेद है। भारतीय मान्यता के अनुसार वेद शाश्वत हैं तथा वेद ईश्वर की वाणी है। वेद का अर्थ है 'ज्ञान'। वेद संस्कृत की 'विद्' धातु से बना है। 'विद' यानी जानना। जैसे किसी समाज व सभा के सही संचालन के लिए नियम बनाए जाते हैं, वैसे ही वेद मानव धर्म के नियम शास्त्र हैं। वेद चार है:

- **ऋग्वेद :** यह सबसे प्राचीन वेद ग्रंथ है, इसमें देवताओं का आह्वान करने के लिए मंत्र हैं। गायत्री मंत्र इसी वेद के मंत्रों में से एक है। इसमें 10 मण्डल एवं 10552 मंत्र हैं। इसके प्रथम मंडल में कहा गया है कि सत्य (ईश्वर) एक है। विद्वान लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं। यह प्राचीनतम वेद है।

चित्र 1: चार वेद

- **यजुर्वेद :** इस वेद में कर्म की प्रधानता है। इसमे 40 अध्याय एवं कुल 1975 मंत्र हैं जिनमें अधिकतर यज्ञ के मंत्र हैं। यह दो भागों में विभजित है : शुक्ल यजुर्वेद व कृष्ण यजुर्वेद।
- **सामवेद :** यह वेद भारतीय संगीत का मूल है। इसमें ऋग्वेद के मंत्रों का संगीतमय रूप है तथा देवताओं की पूजा करने के लिए मंत्र शामिल हैं। जिनकी संख्या 1875 है। सामवेद में अधिकतर ऋचाएँ ऋग्वेद की ही हैं।
- **अथर्ववेद :** यह वेद जन सामान्य से जुड़ी समस्याओं के समाधान तथा जीवन व समाज के नियमों का संकलन है। यह वेद ब्रह्मज्ञान का उपदेश देता है व मोक्ष का उपाय भी बताता है। इसमें गणित, विज्ञान, आयुर्वेद, समाजशास्त्र, कृषि विज्ञान, चिकित्सा विधि एवं रोगों से संबंधित ज्ञान भी संकलित है। इसमें 5987 मंत्र हैं।

©BSEH, Panchkula Not to be republished

3. **ब्राह्मण ग्रंथ :** वेदों के मंत्रों का अर्थ करने में सहायक है। इनमें उन अनुष्ठानों का विशुद्ध रूप से वर्णन है जिनमें वैदिक मंत्रों को प्रयुक्त किया गया है। इनमें गद्य रूप में देवताओं तथा यज्ञ की रहस्यमयी व्याख्या की गई है।

4. **आरण्यक ग्रंथ :** आरण्यक ग्रंथों का आध्यात्मिक महत्व ब्राह्मण ग्रंथों की अपेक्षा अधिक है। वानप्रस्थियों व संन्यासियों को आत्मतत्त्व व ब्रह्मविद्या के ज्ञान के लिए ये ग्रंथ ब्राह्मण ग्रंथ व उपनिषदों को जोड़ने वाली कड़ी है।

5. **उपनिषद :** उपनिषद वेदों का सार है। उपनिषद का अर्थ है गुरु के पास बैठकर शिष्य द्वारा ज्ञान प्राप्त करना। ब्रह्म, जीव व जगत का ज्ञान उपनिषदों की मूल शिक्षा है।

वैदिक दर्शन की विशेषताएँ : वैदिक दर्शन में 'वसुधैव कुटुंबकम' व 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की बात कही गई है। इससे व्यक्ति का चरित्र संकीर्णताओं के बंधन से मुक्त होकर समस्त पृथ्वी को अपना परिवार समझने लगता है। इसके ज्ञान से व्यक्ति स्तुति व यज्ञ के माध्यम से अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु एवं आकाश जैसे प्राकृतिक तत्त्वों को स्वच्छ एवं सुरक्षित रखने की प्रेरणा लेता है। वैदिक दर्शन की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं : (1) नैतिकता व सत्य पर आधारित, (2) प्रकृति की प्रधानता, (3) बहुदेववाद व एकेश्वरवाद की अवधारणा, (4) ऋत (नियम) की अवधारणा, (5) चार पुरुषार्थ की अवधारणा, (6) यज्ञ एवं अनुष्ठानों की प्रधानता, (7) भौतिक जीवन के प्रति उदासीनता, (8) कर्म के आधार पर पूर्वजन्म के सिद्धांत की मान्यता, (9) अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति, (10) आत्मा की अमरता में विश्वास, (11) त्रिगुण के सिद्धांत की मान्यता (सत् रज तम), (12) ऋण की अवधारणा (देव ऋण, गुरु ऋण, पितृ ऋण) की अवधारणा, (13) विश्व भ्रातृत्व की प्रेरणा, (14) सहिष्णुता व धैर्य की प्राप्ति में सहायक, (15) सामाजिक कुशलता का विकास एवं (16) सरल एवं पवित्र जीवन जीने की प्रेरणा आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक दर्शन व्यक्ति को लोभ व मोह से दूर रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना सिखाता है। दूसरों की सेवा करने को पुण्य एवं दूसरों को दुःख देने को पाप समझता है। वैदिक दर्शन शाश्वत है, यह नित्य नूतनता का आभास करवाता है तथा आदर्श जीवन जीने की कला सिखाता है। अतः वैदिक ज्ञान की प्राप्ति न केवल आधुनिक मानव के लिए अपितु मानव जाति के भविष्य के लिए भी आवश्यक है। वैदिक ज्ञान भारतीय संस्कृति की धरोहर है। वेद के ज्ञान से विमुख होने के कारण ही आज संसार अनेकानेक समस्याओं से घिरा है। इस प्रकार वेदों का दार्शनिक चिंतन सामंजस्य, सदाचार, सहयोग तथा समन्वय की प्रेरणा देता है।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

जैन दर्शन

जैन दर्शन संसार के प्राचीन दर्शनों की श्रेणी में आता है। इसे 'श्रमणो' का दर्शन भी कहा जाता है। जैन दर्शन में 24 तीर्थंकर हुए हैं जिनमें सबसे पहले ऋषभदेव व अंतिम भगवान महावीर स्वामी माने गये हैं। वेदों में भी प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का उल्लेख मिलता है तथा उनके द्वारा ही सबसे पहले जैन दर्शन का प्रादुर्भाव हुआ। इन्हें ही जैन दर्शन का संस्थापक व प्रवर्तक माना जाता है। चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर ने छठी शताब्दी ई.पू. में ऋषभदेव की विचारधारा की पुनरावृत्ति की।

चित्र 2: महावीर स्वामी

1. महावीर स्वामी : चौबीसवें तीर्थंकर महावीर स्वामी थे। इनका जन्म 599 ई.पू. वैशाली गणतंत्र (बिहार) के कुण्डग्राम में हुआ था। इनके पिता सिद्धार्थ ज्ञातृक कुल के सरदार तथा माता त्रिशला लिच्छिवी राजा चेतक की बहन थी। महावीर की पत्नी का नाम यशोदा था। महावीर का बचपन का नाम वर्द्धमान था। बचपन में वे बहुत ही वीर स्वभाव के थे। इसलिए इनका नाम 'महावीर' पड़ा। महावीर स्वामी राज परिवार से संबंधित थे। 30 वर्ष की अवस्था में वे राजसी वैभव व सारे सुख छोड़कर ज्ञान की खोज में निकल पड़े और जंगल में एक साल वृक्ष के नीचे बैठकर एवं भोजन-पानी के बिना, वर्षों तक तपस्यारत रहकर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति की।

2. जैन दर्शन की उत्पत्ति : जैन उन्हें कहते हैं 'जो जिन के अनुयायी हो। जिन शब्द 'जि' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'जीतना' अतः 'जिन' का अर्थ है इंद्रियों को जीतने वाला।

3. जैन दर्शन के त्रिरत्न : मोक्ष प्राप्ति, संसार की मोह माया व इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करना ही इस धर्म का एक मात्र उद्देश्य है। मोक्ष प्राप्ति के लिए महावीर स्वामी ने तीन उपाय बताए हैं जो त्रिरत्न कहलाए, वे इस प्रकार हैं :

सम्यक् दर्शन : सत्य तथा तीर्थंकरों में पूरी आस्था व विश्वास रखना।

सम्यक् ज्ञान : सम्यक् ज्ञान का अर्थ है 'संदेह रहित वास्तविक ज्ञान।' सच्चे व पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति के लिए सभी मनुष्यों को तीर्थंकरों के उपदेशों का अध्ययन एवं अनुसरण करना चाहिए।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

सम्यक् आचरण : मनुष्य अपनी इंद्रियों को वश में करके ही सत्य ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। अत: इंद्रियों पर संयम करके सुख-दु:ख में समभाव रखना ही सम्यक् चरित्र है।

4. **जैन दर्शन के पंच महाव्रत :** मोक्ष प्राप्ति के तीन साधनों का पालन करने के लिए जैन दर्शन में गृहस्थ लोगों को पाँच 'महाव्रत' पालन करने को कहा गया है। वे हैं - अहिंसा, अमृषा, अस्तेय व अपरिग्रह। महावीर स्वामी ने इन चारों उपायों में पाँचवां ब्रह्मचर्य जोड़कर इन्हें त्रिरत्न की प्राप्ति का साधन बतलाया है।

- **अहिंसा :** अहिंसा महावीर व जैन दर्शनके सिद्धांतों का मूल मंत्र है। मन, कर्म, वचन से किसी के प्रति हिंसा की भावना न रखना वास्तविक अहिंसा है।
- **अमृषा :** महावीर स्वामी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक परिस्थिति में सत्य बोलना चाहिए। भयभीत होने पर भी असत्य न कहे तथा हँसी मजाक में भी असत्य न बोले।
- **अस्तेय :** अस्तेय का अर्थ है चोरी न करना अर्थात् बिना अनुमति किसी दूसरे व्यक्ति की कोई वस्तु नहीं लेनी चाहिए और न ही उसकी इच्छा करनी चाहिए।
- **अपरिग्रह :** आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है।
- **ब्रह्मचर्य :** मोह-वासना से दूर रहकर ज्ञान व शक्ति प्राप्त करना तथा जरूरत से ज्यादा किसी वस्तु का प्रयोग न करना तथा इंद्रियों पर संयम रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है।

5. **दिगम्बर व श्वेताम्बर :** महावीर स्वामी 527 ई.पू. में बिहार के पावापुरी नामक स्थान पर निर्वाण को प्राप्त हुए। उनके बाद जैन परम्परा दो भागों में विभक्त हो गई। जिनमें एक वर्ग दिगम्बर व दूसरा श्वेताम्बर कहलाया। दिगम्बर साधु दस दिशाओं को वस्त्र मानते हैं जबकि श्वेताम्बर श्वेत वस्त्र पहनते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीर द्वारा कहे गए सिद्धांत इस युग के लिए सर्वथा प्रासंगिक हैं। जैन दर्शन आत्मा की अमरता, पुनर्जन्म एवं कर्मवाद में विश्वास रखता है। जैन दर्शन जातिवाद, छुआछूत एवं आडम्बरवाद का विरोध व नारी सम्मान का समर्थन करता है। अत: जैन दर्शन का दार्शनिक चिंतन मूलत: आत्म कल्याण की ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देता है।

बौद्ध दर्शन

भारत की धरती पर समय-समय पर अनेक महापुरुषों का जन्म हुआ है। ऐसे ही छठी शताब्दी ई.पू. एक महान विभूति गौतम बुद्ध का जन्म हुआ, उन्होंने रूढ़िवादिता तथा सामाजिक जटिलता के विरुद्ध आवाज उठाई और बौद्ध दर्शन की स्थापना की।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

चित्र 3: महात्मा बुद्ध व उनके पाँच शिष्य

महात्मा बुद्ध के जीवन की चार महत्वपूर्ण घटनाएं :

* महाभिनिष्क्रमण
* सम्बोधि
* धर्म-चक्र प्रवर्तन
* महापरिनिर्वाण

1. महात्मा बुद्ध : महात्मा बुद्ध का जन्म 563 ई.पू. में शाक्य गणराज्य की तत्कालीन राजधानी कपिलवस्तु के निकट लुंबिनी (नेपाल) में हुआ था। इनके पिता शुद्धोधन शाक्य गण के मुखिया थे तथा माता का नाम महादेवी था। उनके बचपन का नाम सिद्धार्थ था। उनका मन सांसारिक बातों में नहीं लगता था। इसी कारण वे एक वृद्ध व्यक्ति, एक बीमार व्यक्ति, एक मृत व्यक्ति तथा एक संन्यासी को देखकर 29 वर्ष की आयु में राज्य वैभव को छोड़कर ज्ञान की खोज में निकल गए। उनके जीवन घर छोड़ने की घटना को बौद्ध साहित्य में 'महाभिनिष्क्रमण' कहा जाता है।

महाभिनिष्क्रमण के उपरांत उन्होंने कई वर्षों तक संन्यासी जीवन व्यतीत किया। सबसे पहले वे आलार कलाम तपस्वी के पास ज्ञानार्जन करने हेतु गए। किंतु वहाँ उनकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई। इसके बाद वे राजगृह के ब्राह्मण आचार्य उद्रक एवं रामपुत्त के पास गए किंतु इनसे भी उनकी ज्ञान पिपासा शांत नहीं हो सकी। तब सिद्धार्थ वहाँ से उरुवेला वन में पहुँचे तथा अपने पाँच साथियों के साथ उरुवेला के पास निरंजना नदी के तट पर कठोर तपस्या करने लगे। फिर भी वे संतुष्ट नहीं हुए। इस समय उनके वे पांचों साथी उन्हें छोड़कर चले गए लेकिन वे विचलित नहीं हुए। अब उन्होंने ध्यान लगाने का निश्चय किया और वहीं पर एक पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान लगा कर बैठ गए। सात दिन तक ध्यान लगाने के पश्चात् वैशाख महीने की पूर्णिमा के दिन उन्हें 'आत्मबोध' हुआ और तभी से वे बुद्ध कहलाने लगे। जिस वृक्ष के नीचे बैठ कर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ वह वृक्ष 'बोधिवृक्ष' के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा उस स्थान का नाम 'बोधगया' पड़ गया। जो बिहार राज्य में है। जीवन की इस घटना को 'संबोधि' कहा गया।

ज्ञान प्राप्ति के बाद महात्मा बुद्ध ने पहला उपदेश सारनाथ में पाँचों साथियों सहित तपसु व मल्लिक नाम के दो बंजारों को तथा अन्य लोगों को दिया। इसे ही बौद्ध ग्रंथों में 'धर्म-चक्र प्रवर्तन' कहा है। अंत में लगभग 45 वर्षों तक उपदेश देने के बाद 80 वर्ष की आयु में 483 ई.पू. में गोरखपुर के समीप कुशीनगर नामक स्थान पर गौतम बुद्ध ने अपना शरीर त्याग दिया। इस घटना को 'महापरिनिर्वाण' कहते हैं।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

गौतम बुद्ध के अनुयायी दो भागों में विभाजित हो गए थे, एक भिक्षुक और दूसरे उपासक। भिक्षुक बौद्ध दर्शन के प्रचार के लिए संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे तथा उपासक गृहस्थ दर्शन में रहते हुए भी बौद्ध दर्शन को मानते थे। महावीर स्वामी की तरह ही महात्मा बुद्ध भी मानवता के शिक्षक थे। उन्होंने अपने उपदेशों से दु:ख से पीड़ित लोगों को मुक्त कर सतत शांति प्राप्ति का मार्ग बताया।

2. चार आर्य सत्य :

- **दु:ख :** संसार में जन्म-मरण, संयोग-वियोग, लाभ-हानि सभी दु:ख ही दु:ख हैं।
- **दु:ख का कारण :** सभी प्रकार के दु:खों का कारण तृष्णा या वासना है।
- **दु:ख निरोध :** तृष्णा के निवारण से या लालसा के संयम से दु:ख का निराकरण हो सकता है।
- **दु:ख निरोध मार्ग :** दु:खों पर विजय प्राप्त करने का मार्ग है और वह अष्टमार्ग है।

3. अष्टमार्ग : गौतम बुद्ध ने कहा कि निर्वाण अथवा मोक्ष प्राप्ति के लिए तृष्णा को मिटा देना चाहिए और इसके लिए मनुष्य को अष्टमार्ग का अनुसरण करने की सलाह दी गई है। अष्टमार्ग के 8 उपाय निम्नलिखित हैं :

- **सम्यक् दृष्टि :** सत्य-असत्य, पाप-पुण्य आदि में भेद करने से ही चार आर्य सत्यों में विश्वास पैदा होता है।
- **सम्यक् संकल्प :** तृष्णा से दूर रहने, मानसिक व नैतिक विकास का संकल्प लेना।
- **सम्यक् वाणी :** हमेशा सत्य और मीठी वाणी बोलना।
- **सम्यक् कर्म :** हमेशा सच्चे और अच्छे कर्म करना।
- **सम्यक् जीविका :** अपनी आजीविका के लिए पवित्र तरीके अपनाना।
- **सम्यक् प्रयास :** अपने को अच्छा बनाने का प्रयास करना तथा शरीर को अच्छे कार्य में लगाने के लिए उचित परिश्रम करना।
- **सम्यक् स्मृति :** अपनी गलतियों को हमेशा याद रखकर विवेक और सावधानी से कर्म करने का प्रयास करना।
- **सम्यक् समाधि :** मन को एकाग्र करने के लिए ध्यान लगाना।

4. गौतम बुद्ध के दस नैतिक आचरण :

❖ अहिंसा ❖ सत्य ❖ अस्तेय ❖ अपरिग्रह ❖ ब्रह्मचर्य
❖ सुगंधित पदार्थों का त्याग ❖ असमय भोजन न करना ❖ नृत्य व गान का त्याग
❖ कोमल शैय्या का त्याग करना ❖ कामिनी कंचन का त्याग करना।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

5. हीनयान-महायान : द्वितीय बौद्ध संगति के बाद बौद्ध दर्शन दो भागों में विभाजित हो गया था: हीनयान एवं महायान। हीनयान मानने वालों का मत था कि जो नियम एक बार बन गए उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता जबकि महायान समर्थक इस बात के पक्ष में थे कि समय के साथ परिवर्तन होना चाहिए। हीनयान बुद्ध की शिक्षाओं का कट्टरता से पालन करने पर बल देता था जबकि महायान बुद्ध को ईश्वर रूप मानकर उनकी उपासना पर बल देता था।

भारत में बौद्ध राजा

- अजात शत्रु
- सम्राट अशोक
- कनिष्क
- हर्षवर्धन

6. विश्व में बौद्ध दर्शन का प्रचार : बौद्ध दर्शन का विकास छठी शताब्दी ई.पू. से प्रारंभ होकर सम्राट अशोक के शासनकाल तक राज दर्शन के रूप में होता रहा। सम्राट अशोक के बाद कनिष्क व हर्ष ने इस दर्शन के विकास में मुख्य भूमिका निभाई। बौद्ध दर्शन के प्रसार के लिए अशोक ने चौरासी हजार स्तूप बनवाये तथा स्तम्भ व शिलालेखों से भी बौद्ध दर्शन का विस्तार व प्रसार किया। यह धर्म समस्त भारत में ही नहीं अपितु चीन, जापान, श्याम (थाइलैण्ड), लंका, अफगानिस्तान, सिंगापुर तथा एशिया के पश्चिमी देशों तक फैला। बाद में भारत से बौद्ध दर्शन लुप्तप्राय हो गया। इसके कई कारण रहे जो इस प्रकार हैं :

क) **आन्तरिक कारण :** बौद्ध दर्शन का मुकाबला करने के लिए हिंदू (वैदिक) दर्शन के विद्वानों ने कर्मकांड के स्थान पर वेदों में बताए गये ज्ञान-मार्ग व भक्ति मार्ग का प्रचार किया जिसके सामने बौद्ध दर्शन का तत्त्व ज्ञान फीका पड़ने लगा। अनेक राजा भी वैदिक दर्शन के ज्ञान से प्रभावित होकर बौद्ध दर्शन को त्यागने में लग गए, परिणामस्वरूप उसका प्रभाव कम होता चला गया।

ख) **बाह्य कारण :** मध्य एशिया से आए हूण, मंगोल, मोहम्मद-बिन-कासिम, महमूद गजनवी, मोहम्मद गौरी आदि के आक्रमणों एवं लूट के कारण भी बौद्ध दर्शन का पतन हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज भी विश्व के अनेक देशों में बौद्ध दर्शन के अनुयायी हैं। बौद्ध दर्शन का अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना था। महात्मा बुद्ध का कहना था कि 'मन में पैदा होने वाली तृष्णा या वासना रूपी अग्नि को बुझा देने पर मोक्ष प्राप्त हो सकता है।' प्रत्येक व्यक्ति अष्टमार्ग के अनुसार जीवन व्यतीत कर अज्ञानता व दु:खों से मुक्ति पा सकता है।

पारसी दर्शन

पारसी दर्शन विश्व का प्राचीन दर्शन है इसका जन्म फारस (ईरान) में हुआ था। आर्यों का ईरानी शासक पैगंबर जरथुस्त्र इस दर्शन के संस्थापक माने जाते हैं। इनके मुख्य देवता सूर्य, पृथ्वी, चंद्र आदि थे। परंतु सूर्य सबसे बड़ा देवता माना जाता था। फारस का यह प्राकृतिक दर्शन कालांतर में दर्शन श्रवौन के रूप में स्वीकार किया गया।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

यह श्रवौन दर्शन बाद में पारसी दर्शन बना। इस्लाम से पूर्व ईरान में जरथुस्त्र दर्शन का प्रचलन था। जरथुस्त्र का जन्म पश्चिम ईरान के अजरबेजान प्रांत में हुआ था उसके पिता का नाम पोमशष्पा और माता का नाम दुधधोवा था। बचपन से ही वे बड़े चिंतनशील एवं आध्यात्मिक थे। 30 वर्ष की आयु में सबलान पर्वत पर उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई। अधिकांश इतिहासकार जरथुस्त्र का काल 600 ई.पू. मानते हैं।

पारसी दर्शन के अनुसार शरीर नाशवान है तथा आत्मा अमर है। मनुष्य को अपने कर्म के अनुसार सत्य व असत्य का पालन करने से स्वर्ग व नरक की प्राप्ति होती है। पारसी दर्शन के अनुसार संसार में दैवी व दानवी दोनों प्रकार की शक्तियाँ हैं। दैवी शक्तियों के प्रतीक 'अहुरमज्दा' हैं लेकिन अहुरमज्दा में आस्था रखते हुए भी अन्य देवी देवताओं के अस्तित्व को नकारा नहीं जाता। अहुरमज्दा शक्ति कहती है कि 'हे मनुष्य! बुरी बात न सोचो, सन्मार्ग न छोड़ो तथा पाप न करो।' अहुरमज्दा सर्वोच्च देवता होते हुए भी दैनिक जीवन के अनुष्ठानों व कर्मकांडों में अग्नि देवता उनके प्रमुख देवताओं के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इसलिए पारसियों को अग्निपूजक भी कहा जाता है। पारसियों के शव की अंतिम संस्कार विधि भी अलग है। वह शवों को ऊँची मीनार पर खुला छोड़ देते थे जिसे दखमा या टावर ऑफ साइलैंस कहते हैं जहाँ गिद्ध उसे नोच-नोचकर खा जाते थे। बाद में शव की अस्थियाँ इकट्ठी करके दफना दी जाती थी लेकिन अब इस परंपरा में धीरे-धीरे कमी हो रही है। अब पारसी लोग शवों को दफनाने लगे हैं। दानवी शक्तियों का प्रतीक 'अहरिमन' है। अहरिमन मनुष्य को शैतान बनाकर नरक की ओर ले जाता है। इन दोनों शक्तियों में संघर्ष होता रहता है किंतु अंतिम विजय अहुरमज्दा की ही होती है पारसियों के अनुसार शरीर के दो भाग हैं- एक शारीरिक और दूसरा आध्यात्मिक। मरने के बाद शरीर तो नष्ट हो जाता है किंतु आध्यात्मिक भाग जीवित रहता है।

जरथुस्त्र की मृत्यु के बाद उनकी शिक्षाएँ धीरे-धीरे बैक्ट्रियां और फारस में फैली। लगभग 633 ई. में अरब मुसलमानों के ईरान इराक पर आक्रमण के कारण कुछ लोग रेगिस्तान व पहाड़ों में चले गए। कुछ अन्य सुरक्षित स्थानों पर चले गए। यहाँ पर उन्होंने सौ साल तक रह कर गुप्त रूप से पालदार जहाज बनाए और अंत में जहाज से भारत आए और गुजरात में काठियावाड़ के सिरे पर मछुआरों के दिऊ गाँव पहुँचे। भारत में आज जो पारसी दर्शन को मानने वाले लोग हैं वे इन्हीं प्रारंभ में बसने वालों के वंशज कहलाते हैं। भारत में पारसियों का एक छोटा समुदाय है। वह मुख्य रूप से पश्चिमी तट, कोलकाता, चेन्नई और दिल्ली में निवास करता है। इसके विपरीत उन्नीसवीं सदी के मध्य में ईरान से भारत में आया पारसी समुदाय एक बढ़ता हुआ समुदाय है। ये दोनों पारसी समूह अग्नि मंदिरों में पूजा करते हैं और पारसी दर्शन के रीति-रिवाजों का पालन करते हैं। आज भारत में रहने वाले पारसी लोग नारियल व ताड़ के पेड़ उगाने के साथ-साथ बड़े-बड़े व्यवसाय भी कर रहे हैं। तीन पारसियों दादाभाई नौरोजी, फिरोजशाह मेहता, जमशेदजी टाटा व वर्तमान में रतन टाटा का भारत की राजनीति एवं उद्योग व्यवसाय में विशेष योगदान रहा।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

पारसी दर्शन में निराशावाद व अवसाद को तो पाप का दर्जा दिया गया है। जरथुस्त्र चाहते हैं कि मानव इस विश्व का पूरा आनंद उठाए और खुश रहे। वह जो भी करे बस एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि सदाचार के मार्ग से कभी विचलित न हो। भौतिक सुख-सुविधाओं से संपन्न जीवन की मनाही नहीं है लेकिन यह भी कहा गया है कि समाज से तुम जितना लेते हो उससे अधिक देना चाहिए। जो हम से कम संपन्न है उनकी मदद करनी चाहिए।

यहूदी दर्शन

यहूदी दर्शन दुनिया के प्राचीन दर्शनों में से एक है। यहूदी दर्शन का आरम्भ पैगम्बर हजरत अब्राहम से माना जाता है। अब्राहम के बाद यहूदी इतिहास में सबसे बड़ा नाम मूसा का है। मूसा ही यहूदियों के प्रमुख व्यवस्थाकार हैं। मूसा को ही पहले से चली आ रही परम्परा को स्थापित करने के कारण यहूदी दर्शन का संस्थापक माना जाता है।

1. **यहूदी दर्शन की उत्पत्ति :** अब्राहम को यहूदी, ईसाई व मुसलमान तीनों दर्शनों के लोग अपना पितामह मानते हैं। अब्राहम के दो बेटे हजरत इसहाक व हजरत इस्माइल थे। दोनों के पिता एक थे। किन्तु माँ अलग-अलग थी। अब्राहम के पोते का नाम याकूब था। याकूब के बेटे का नाम यहूदा था। यहूदा के नाम पर ही उनके वंशज यहूदी कहलाए तथा उनका दर्शन यहूदी दर्शन कहलाया। मूसा मिस्र के फराओ के जमाने में हुए थे। ऐसा माना जाता है कि उसकी माँ ने उसे नील नदी में बहा दिया था। फिर उसे नदी से निकाल कर फराओ की पत्नी ने पाला था। बड़े होकर वह मिस्र के राजकुमार बने। बाद में उसने यहूदियों को जागृत कर एकजुट किया। यहूदी मान्यताओं के अनुसार ईश्वर एक है। उसके अवतार या स्वरूप नहीं हैं लेकिन वह दूत से अपने संदेश भेजता है। मूसा को ईश्वर का संदेश दुनिया में फैलाने का अधिकार मिला था। यहूदी ग्रंथ तनख इब्रानी (हिब्रू) भाषा में लिखा गया है जो इसाइयों की बाइबिल का पूर्वार्द्ध है। यहूदी अपने ईश्वर को यहोवा कहते हैं। यहूदियों के पुरोहित को रबी तथा पूजा स्थल को 'सिनागौग' कहा जाता है।

2. **यहूदी दर्शन की शिक्षाएँ :**
   - मैं स्वामी हूँ, तेरा ईश्वर, तुझे दासता से मुक्त करने वाला है।
   - मेरे अतिरिक्त तू किसी दूसरे ईश्वर को नहीं मानेगा।
   - तू अपने स्वामी व अपने प्रभु का नाम व्यर्थ ही नहीं लेगा।
   - छह दिन तू काम करेगा तथा सातवें दिन विश्राम करेगा, यह प्रभु का दिन है।
   - अपने माता-पिता का सम्मान कर उन्हें सम्मान दें।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

- तू हत्या नहीं करेगा।
- तू चोरी नहीं करेगा।
- तू अपने पड़ोसी के खिलाफ झूठी गवाही नहीं देगा।
- तू अपने पड़ोसी के मकान, पड़ोसी की पत्नी, नौकर, नौकरानी तथा उसकी सम्पत्ति पर बुरी नज़र नहीं रखेगा।

यहूदी दर्शन के अनुसार नैतिकता ही मानव जाति की पहचान है। इनके अनुसार मनुष्य के पास ईश्वर के कानून के आज्ञापालन व आज्ञा का उल्लंघन दो विकल्प हैं।

3. यरुशलम का महत्व : यरुशलम इजराइल देश की विवादित राजधानी है। इस पर यहूदी, इस्लाम और ईसाई तीनों दर्शनों के अनुयायी दावा करते हैं क्योंकि यहीं यहूदियों का पवित्र सुलेमानी मन्दिर हुआ करता था जो अब एक दीवार मात्र है। यही शहर ईसा-मसीह व हजरत मुहम्मद की कर्मभूमि रहा है लेकिन वास्तव में यरुशलम प्राचीन यहूदी राज्य का केन्द्र और राजधानी रहा है। यहीं पर मूसा ने यहूदियों को धार्मिक शिक्षा दी थी।

4. भारत में यहूदी : भारत में यहूदियों ने केरल के मालावार तट पर प्रवेश किया था। अतिथि-प्रिय हिन्दू राजा ने यहूदी नेता जोसेफ को उपाधि और जागीर प्रदान की थी। यहूदी कश्मीर व पूर्वोत्तर राज्यों में भी बसे हैं।

कन्फ्यूशियस दर्शन

जब भारत में भगवान महावीर व महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार हो रहा था, उसी समय चीन में भी एक महान समाज सुधारक का जन्म हुआ, जिसका नाम कन्फ्यूशियस था। उस समय चीन में झोऊ राजवंश की शक्ति कम होने के कारण वहाँ अनेक राज्यों का उदय हो रहा था तथा वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहते हैं। इस समय चीन की जनता बहुत कष्टदायक जीवन यापन कर रही थी। ऐसे समय में चीन वासियों को नैतिकता का पाठ पढ़ाने के लिए कन्फ्यूशियस का जन्म हुआ।

1. कन्फ्यूशियस का जीवन : कन्फ्यूशियस का जन्म ईसा-मसीह के जन्म से करीब 550 वर्ष पहले चीन के शानदाँग प्रदेश में हुआ था। बचपन में ही इसके पिता की मृत्यु हो गयी। 17 वर्ष की आयु में ही उसने सरकारी नौकरी की तथा कुछ वर्षों बाद सरकारी नौकरी छोड़कर फिर शिक्षण कार्य में लग गये। घर में ही विद्यालय खोलकर विद्यार्थियों को इतिहास, काव्य एवं नीति शास्त्र की शिक्षा देने लगे। 53 वर्ष की आयु में एक शहर के शासनकर्त्ता तथा बाद में मंत्री नियुक्त हुए। मंत्री बनने पर उसने दण्ड के बदले मनुष्य के चरित्र सुधार पर बल दिया। वे अपने शिष्यों को विनयी, परोपकारी, गुणी व चरित्रवान बनने की प्रेरणा देते थे। वे लोगों को सत्य, प्रेम,

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

न्याय व बड़ों का आदर-सम्मान करने का संदेश देते थे।

2. कन्फ्यूशियस की शिक्षाएँ : कन्फ्यूशियस एक समाज सुधारक थे। उन्होंने ईश्वर के बारे में कोई उपदेश नहीं दिया। उनके समाज सुधारक उपदेशों के कारण चीनी समाज में स्थिरता आयी। उनका दर्शन आज भी चीनी समाज का पथ प्रदर्शक बना हुआ है।

कन्फ्यूशियस मत के अनुसार शासक का अधिकार आज्ञा देना तथा शासित का कर्तव्य उस आज्ञा का पालन करना है। उसी प्रकार पिता, पति व बड़े भाई का अधिकार आदेश देना है और पुत्र, पत्नी व छोटे भाई का कर्तव्य आदेशों का पालन करना है। परन्तु साथ ही आवश्यक है कि आदेश देने वाले का शासन औचित्य, नीति और न्याय पर आधारित हो। उनका विचार था कि मनुष्य को उसके समस्त क्रियाकलापों के लिए नियम अपने अन्दर से ही प्राप्त हो सकते हैं।

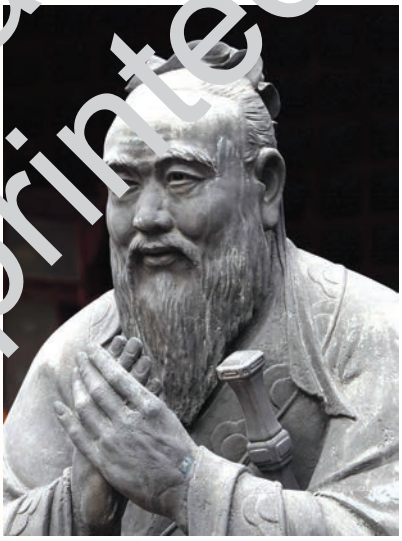

चित्र 4 : कन्फ्यूशियस

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसार के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग दर्शनों का विकास हुआ। सभी ने मानव जाति को बुरे कार्यों से बचने और सत्य के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। इन दर्शनों ने समाज को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया। विश्व के सभी दर्शनों का अन्तिम लक्ष्य मानव जीवन को आध्यात्मिक एवं श्रेष्ठ बनाना है। सभी दर्शन मनुष्य के चरित्र निर्माण के लिये सद्गुणों की आवश्यकता पर बल देते हैं। मानव सेवा, परोपकार, अहिंसा, प्रेम आदि भावनाएँ सभी दर्शनों में पाई जाती हैं। हमें सभी दर्शनों के प्रति सम्मान की भावना रखनी चाहिए।

क्या आप जानते हैं?

मोक्ष : जन्म-मरण के बंधन से मुक्ति।

चेतना : स्वयं व आस-पास के तत्त्वों का बोध होने, समझने व उनके मूल्यांकन करने की शक्ति।

ज्ञान : किसी वस्तु, तथ्य, घटना अथवा कथन के बारे में सत्य को जानना।

मानवता : मानवता मनुष्य का वह गुण है जिससे वह अन्य लोगो के दु:ख दर्द को महसूस करें और उनके सुखी जीवन के मार्ग में बाधक न बनकर उनकी प्रगति व विकास में सहायक हो। इसके मूल तत्त्व सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, त्याग व ईमानदारी आदि हैं।

सम्यक् : पूर्व धारणा व किसी प्रभाव के बिना किसी वस्तु को जैसी है वैसी ही देखना।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

क्या आप जानते हैं?

अमृषा : सत्य संकल्प।

नैतिकता : किसी समाज के द्वारा बनाए गए नियमों के अनुसार किए जाने वाले आचरण को नैतिकता कहते हैं। मनुष्य के अन्त:करण द्वारा उचित अनुचित का बोध है। पवित्रता, न्याय, ईमानदारी व सत्य नैतिकता का आधार है।

अनावृत : आवरणरहित (खुला)

शाश्वत : सदैव के लिए

ऋत : यह सृष्टि के सर्वमान्य नियम है तथा प्रकृति व्यवस्था संतुलन के सिद्धांत पर आधारित है।

फिर से जानें :

1. वैदिक दर्शन में मनुष्य जीवन को उन्नत बनाने वाले चार पुरुषार्थों के नाम लिखिए।
2. वैदिक दर्शन के चार महत्वपूर्ण स्त्रोतों के नाम लिखें।
3. जैन दर्शन के पाँच महाव्रतों के नाम लिखें?
4. गौतम बुद्ध के जीवन की चार महत्वपूर्ण घटनाओं के नाम बताओ।
5. पारसी दर्शन व यहूदी धर्म के संस्थापकों का उल्लेख करों।
6. चीन के महान समाज सुधारक कन्फ्यूशियस का जन्म कब व कहां हुआ था?
7. सभी दर्शनों का अंतिम लक्ष्य क्या है?
8. 'गायंत्री महामंत्र' किस वेद से संबधित है?

आइए विचार करें :

1. विश्व के चार दर्शनों के नाम लिखो तथा वैदिक दर्शन की विशेषताओं का वर्णन करो।
2. जैन धर्म की उत्पत्ति कैसे हुई। जैन दर्शन व बौद्ध दर्शन में क्या-क्या समानताएं हैं।
3. गौतम बुद्ध के चार आर्य सत्यों का वर्णन करते हुए उनके द्वारा बताएं गए अष्टमार्ग का वर्णन करो।
4. पारसी व यहूदी दर्शन की शिक्षाओं का उल्लेख करें।
5. वैदिक साहित्य की संक्षिप्त व्याख्या करो।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

आओ करके देखें :

1. विश्व के उन देशों के नाम लिखो जहां पारसी एवं यहूदी दर्शन के समर्थक निवास करते हैं।
2. विभिन्न दर्शनों के प्रमुख केंद्रों को विश्व के मानचित्र पर अंकित कीजिए।
3. अपने आस-पड़ोस में रहने वाले भिन्न-भिन्न पंथों, सम्प्रदायों के लोगों से चर्चा करके अपने अनुभव लिखें।

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

अध्याय - 4

मध्यकालीन समाज : यूरोप एवं भारत

किसी भी देश की सामाजिक संरचना का आधार वहां का भौतिक पर्यावरण होता है। लेकिन समय के साथ सामाजिक संरचना में परिवर्तन भी आते हैं। परिवर्तनों का कारण समाज की आवश्यकताएं होती हैं। इतिहास इन्हीं परिवर्तनों के अध्ययन का एक विज्ञान है। इसके अध्ययन से पता चलता है कि सामाजिक संरचना सरलता से जटिलता की ओर अग्रसर रही है। प्राचीन काल में सामाजिक संरचना सरल थी, जो मध्यकाल तक आते-आते जटिल हो गई थी। यूरोप में मध्यकाल को अंधयुग कहा गया। इस कालखंड को वहां शक्तिशाली द्वारा कमजोर के शोषण का दौर माना जाता है। यूरोप में विशाल राज्यों के पतन के बाद सामंतों ने शासकीय दायित्व निभाने आरंभ कर दिये थे। उनके शासन का आधार शोषण व भोग विलास था। दूसरी ओर भारतीय समाज में मध्यकाल में इस्लाम के आगमन से अनेक परिवर्तन हुए। इस्लाम के प्रसार के लिए धर्मांतरण हुआ यद्यपि इसमें आंशिक सफलता ही मिल पाई। भारतीय जनता ने मध्य काल में विदेशी आक्रमणकारियों का डटकर प्रतिरोध किया।

प्रस्तुत अध्याय में हम निम्नलिखित का अध्ययन करेंगे :

1. यूरोप में मध्यकालीन समाज की संरचना
2. मध्यकाल में यूरोप में स्त्रियों व कृषकों की दशा
3. मध्यकाल में भारत की सामाजिक संरचना
4. मध्यकाल में भारत में किसानों, दासों तथा स्त्रियों की दशा

यूरोपीय समाज

मध्यकालीन यूरोपीय समाज मुख्य रूप से तीन वर्गों में बंटा था। पहला वर्ग पादरियों का था। इनका मुख्य कार्य ईश्वर की सेवा करना और चर्च की व्यवस्था देखना था। दूसरा वर्ग सामन्तों का था, जिन पर समाज की रक्षा का भार था। तीसरा वर्ग सामान्य जन का था, जो ऊपरी दोनों वर्गों के लिऐ जीवन यापन के साधन जुटाता था। सामान्यत: लोग मानते थे कि समाज का यह विभाजन ईश्वरीय इच्छा पर आधारित है। इसलिए प्रत्येक वर्ग को अपनी स्थिति से सन्तुष्ट रहना चाहिए। लोगों का मानना था कि वर्ग विशेष के लोगों को ईश्वर ने उसी वर्ग के योग्य गुणों के साथ जन्म दिया है। सामान्य गुणों से युक्त व्यक्ति न पादरी बन सकता है तथा न ही सामन्त।

1. **पादरीवर्ग :** समाज में पादरियों का वर्ग सर्वोच्च था। उनका यूरोपीय समाज पर गहरा प्रभाव था। पादरी

गिरजाघर में ईश्वर की सेवा में लगे रहते थे। गिरिजाघर ईसाइयों का उपासना घर होता था। यूरोप के सभी भागों में असंख्य गिरजाघर थे। जिनमें से कुछ छोटे होते थे तो कुछ बड़े। कुछ गिरजाघरों के पास बड़ी भू-सम्पत्ति होती थी। गिरजाघर की घंटी लोगों को प्रार्थना के लिए आह्वान करती थी। यह उन्हें खतरे की सूचना भी देती थी। लोगों का यह भी विश्वास था कि घंटी की ध्वनि में तूफान व भूत प्रेत से रक्षा करने की शक्ति है। ये पादरी एक प्रकार के भू-स्वामी होते थे। भूमि से प्राप्त आय का उपयोग ये पादरी अपने निजी हितों के लिये करते थे। राजा तथा लार्ड सामन्त इनसे परामर्श भी लेते थे। कई छोटे सामन्त तो इनसे कर्ज भी लेते थे। बड़े गिरजाघर के पादरी सुन्दर महलों में रहते, भड़कीले रेशमी वस्त्र, रत्न पहनते तथा घोड़े रखते थे। बड़े पादरियों के अतिरिक्त पादरियों की एक अन्य श्रेणी थी, जिसमें छोटे पादरी आते थे। वे छोटे गिरजाघर के संरक्षक होते थे, जो दूर किसी गाँव में स्थित होता था। ये मुख्यत: साधारण किसानों या शिल्पियों के पुत्र होते थे। बचपन में थोड़े से धन के लालच में ये चर्च की सेवा का प्रण लेकर चर्च के छोटे-मोटे काम करने लग जाते थे। गाँव में जब कोई सामन्त गिरजाघर का निर्माण करता था तो वह इन पादरियों को वहाँ नियुक्त कर देता था। इन पादरियों के पास एक मकान के अतिरिक्त कुछ भूमि भी होती थी। ग्रामवासी अपनी आय का दसवां भाग चर्च को देते थे। बड़े पादरियों की तरह ये छोटे पादरी अधिक पढ़े लिखे नहीं होते थे। गिरजाघर में नियुक्त करने से पहले बड़े पादरी (बिशप) द्वारा इनकी परीक्षा ली जाती थी। यह परीक्षा केवल नाम मात्र की होती थी। इन पादरियों को न तो लैटिन भाषा लिखनी आती थी और न ही बोलनी। यहाँ तक की प्रार्थना के लिए भी ये स्थानीय भाषा का ही प्रयोग करते थे। ये पादरी किसानों की तरह ही रहते थे। किसानों की तरह ही काम करते थे लेकिन जन्म, विवाह व मृत्यु से सम्बन्धित संस्कार इनके बिना पूरे नहीं माने जाते थे। कुछ पादरी गिरजाघरों को किराये पर लगा देते थे। तो कुछ गिरजाघरों के सोना-चाँदी के पूजा पात्रों को बेच डालते थे। कुछ लोग गिरजाघरों में ही जुआ खेलते थे तथा कुछ वहीं झगड़ पड़ते थे।

चित्र 1. पादरी

चित्र 2. गिरजाघर

2. **सामन्त वर्ग :** मध्यकालीन यूरोप में सामन्तों का एक महत्वपूर्ण वर्ग था। इनका मुख्य कार्य न्याय व रक्षा करना था। भूमि पर इन्हीं का अधिकार था लेकिन इन सामन्तों के भी अनेक उपवर्ग थे। यह यूरोपीय समाज का

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

शासकीय वर्ग था। बड़े भू-स्वामी काउंट या लार्ड कहलाते थे। शारीरिक क्षमता, तत्काल निर्णय, आदेश देने व आज्ञा पालन के गुण इनमें बचपन से ही विकसित किए जाते थे। इन्हें युद्धविद्या, आखेट, उचित खान-पान व घुड़सवारी की शिक्षा दी जाती थी। सामन्त न्यायालय में बैठकर न्याय करते थे। इनके पास सैनिको की एक टुकड़ी होती थी जिसका मुख्य कार्य युद्ध में भाग लेना था। समस्त का स्वामित्व राज्य के पास था तथा वह भूमि को बड़े सामंतों में बांट देता था। उसी भूमि को बड़े सांमत अपने से छोटे सामन्तों में बांटकर उन्हें भू-स्वामी बना देता था। प्रत्येक छोटे भू-स्वामी को अपने से बड़े भू-स्वामी की सैनिक सेवा करनी पड़ती थी। इसी कारण इन्हें सैनिक टुकड़ी रखनी पड़ती थी ताकि समय पर स्वामी की सहायता की जा सके। सामन्तों का जीवन वैभवशाली था। वे बड़े महलों मे रहते थे। बहुमूल्य वस्त्र धारण करते थे तथा इनके पास हजारों एकड़ भूमि होती थी। इनके यहाँ पादरी, अन्त:पुर प्रहरी के अतिरिक्त दर्जनों नौकर-चाकर होते थे। छोटे सामन्तों की भू-सम्पदा को जागीर या मेनर कहा जाता था। मेनर में एक किला व सैकड़ों एकड़ भूमि होती थी। मेनर का भू-स्वामी अपनी भूमि पर दास किसानों से कृषि करवाता था, न्याय करता था तथा आवश्यकता पढ़ने पर अपने स्वामी की सैनिक सहायता भी करता था। इनके मेनर के किलों की रचना व सजावट साधारण होती थी। वे बाहरी दुनिया की प्रत्येक बड़ी सूचना रखते थे। उनकी संगीत व नृत्य में रुचि होती थी। वे बहुमूल्य गाऊन के साथ-साथ भड़कीले व रंगीन वस्त्र पहनते थे तथा गले में माला तथा अंगूठी डालते थे। क्रोधित होकर पत्नी को पीटना, नौकर को मारना आदि उनकी आदतों का भाग था।

चित्र 3. सामंत

यूरोप का समाज सामंती व्यवस्था पर आधारित था। पद सोपान में सबसे ऊपर राजा था। सबस नीचे किसान था।	राजा ↓ सामंत (लॉर्ड) ↓ उपसामंत (काउंट, विसकाउंट) ↓ नाईट ↓ किसान

3. सामान्य जन : मध्यकालीन समाज का तीसरा वर्ग पादरियों व सामन्तों से अलग सामान्य जन था। इस वर्ग का काम ऊपरी वर्गों के लिए संसाधन व खाद्य सामग्री जुटाना था। पहले वर्ग का काम प्रार्थना करना, दूसरे वर्ग का काम रक्षा करना तो इस वर्ग का काम दोनो समाज के लिए उत्पादन करना था। मध्यकालीन व्यवस्था कृषि पर आधारित थी। अत: इस वर्ग में बड़ी संख्या किसानों की थी। कृषि आधारित मध्यकालीन यूरोपीय अर्थ व्यवस्था में रोटी, मांस व चमड़ा जैसी आवश्यकताओं को पूरा करने वाला किसान भी भू-स्वामियों की सम्पत्ति माना जाता था। वह भू-स्वामी की भूमि पर भू-स्वामी के लिए काम करता था। भू-स्वामी उसे जोतने के लिए भूमि देता था। उसे उपज का केवल कुछ भाग ही प्राप्त होता था। उस भाग में से भी दसवां हिस्सा वह चर्च को दे देता था। उसके रहने के लिए उसकी घास-फूंस की एक झोंपड़ी होती थी, जिसमें वर्षा व सर्दी के मौसम में

©BSEH Bhiwani Not to be Republished

उसके पशु भी शरण ले लेते थे। ये लोग दासों का जीवन व्यतीत करते थे। स्वामी या लार्ड की अनुमति के बिना ये अपने बच्चों के विवाह तक नहीं कर सकते थे। स्वामी या सामन्त की जागीर को ये लोग छोड़ कर नहीं जा सकते थे। स्वामी की भूमि पर खेती के अतिरिक्त स्वामी के घर पर इनको अनेक काम करने पड़ते थे, जिनका इन्हें पारिश्रमिक भी नहीं मिलता था। इस प्रकार के कार्यों को बेगार कहा जाता था। यह बेगार इनके पूरे परिवार को करनी पड़ती थी। सामन्त के खेतों में काम करने के अतिरिक्त उन्हें उसकी चक्की में गेहूँ पिसवाने के साथ-साथ तन्दूर में रोटी भी पकवानी पड़ती थी।

4. **अंधविश्वास :** यूरोपीय समाज मे सर्वत्र अंधविश्वास का बोलबाला था। ग्राम वासियों के लिए चर्च व चमत्कार में अभिन्न सम्बन्ध था। किसान बपतिस्मा का जल फसलों पर छिड़कते थे तथा पशुओं को पिला देते थे। बुद्धिमान पादरी अंधविश्वासों व चमत्कारों के विरोधी थे। लेकिन उनका प्रभाव सीमित था।

बपतिस्मा : (धार्मिक स्नान) ईसाई धर्म में प्रक्षालन करने या किसी व्यक्ति को चर्च की सदस्यता देने के लिए की जाने वाली धार्मिक क्रिया।

चित्र 4. बच्चे का बपतिस्मा

मध्यकालीन यूरोपीय किसान

यूरोप में अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी जिसमें भूमि का बड़ा महत्व था। भूमि पर राजा का एकाधिकार था। वह भूमि सामंतों में बांट देता था। सामंत उसे उपसामंतों में बांट देते थे जो किसानों से खेती करवाते थे। किसानों की अनेक श्रेणियां थी। कुछ किसानों की अपनी जमीन होती थी इन्हें स्वतंत्र किसान कहा जाता था लेकिन समाज में इनकी संख्या कम थी। किसानों में बड़ी संख्या अर्धकृषकों की थी जो सामंत की जमीन पर खेती करते थे। ये ज़मीन के साथ ही बंधे होते थे। यदि जमीन कोई दूसरा सामंत ले लेता था तो इन अर्धदासों का स्वामी भी वही हो जाता था इन्हें उपज का नाममात्र का भाग मिलता था। ये जमीन छोड़कर कहीं नहीं जा सकते थे इसे गैर कानूनी माना जाता था। इनको विलेंन भी कहा जाता था। ये अज्ञानता का प्रतीक थे, यूरोप में अनेक कहावतें प्रचलित थी जैसे किसान का मस्तिष्क वज्र का होता है, जिसमें विचार प्रवेश नहीं कर सकते, सुगंध से वे बेहोश हो जाते हैं वर्षा के जल के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का जल उनके चेहरे को नहीं छूता।

आओ चर्चा करें :

कहावतें किसानों के जीवन के बारे में क्या बताती हैं।

© CBSE Not to be Republished

5. ईसाई मठों में जीवन : यूरोप में तीसरी से छठी शताब्दी के बीच मठवाद का विकास हुआ। मध्यकालीन समाज में इन मठों का अलग महत्वपूर्ण स्थान था। मठों में एकांतवासी अथवा विरक्त भिक्षु रहते थे। मठों के पास भी बड़ी भू-सम्पत्ति होती थी। ये आत्मनिर्भर थे। प्रत्येक मठ के अपने प्रार्थना कक्ष, खेत, बाग व खलिहान होते थे। इन की जीवन यात्रा व्यस्त होती थी। आधी रात को उन्हें विशेष पूजा करनी होती थी, जिसकी सूचना उन्हें मठ में बजने वाला बड़ा घण्टा देता था। पूजा करने के बाद ये पुन: सो जाते थे। सुबह उठकर ये प्रात: कालीन प्रार्थना में भाग लेते थे। दोपहर तक ये अध्ययन व चिन्तन में अपना समय व्यतीत करते थे, दोपहर के भोजन के बाद थोड़ी देर विश्राम करके बाइबिल की प्रतिलिपि तैयार करने, बाग में काम करने, मछली पकड़ने, चमड़ा सुखाने, मूर्ति बनाने व रोटी सेंकने जैसे कार्य करते थे। ये संध्याकालीन प्रार्थना करने व भोजन करने के बाद सोने चले जाते थे। मठ का संचालन मठाधीश करता था। मठाधीश के नीचे सहायता करने वाले सहायक मठाधीशों की नियुक्ति की जाती थी। मठाधीश व सहायक मठाधीश सामान्यत: सामन्त ही होते थे। इनका जीवन वैभवशाली होता था, लेकिन इनका जीवन मठ की आचार संहिताओं पर आधारित होता था। यह आचार संहिता सादगी पर आधारित होती थी। भिक्षुओं की तरह भिक्षुणियों के भी मठ होते थे। उनका जीवन निश्चित अनुशासन पर आधारित था लेकिन उनके मठ भिक्षु-मठों की तरह समृद्ध नहीं थे।

चित्र 5. ईसाई मठ

6. स्त्रियों का जीवन : मध्यकालीन यूरोप में सामन्तवर्ग की स्त्रियाँ वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करती थीं। सजना-सँवरना तथा विभिन्न प्रकार के खेल खेलना उनका शौक था। पति की अनुपस्थिति में मेनर या जागीर में उन्हें स्वामी की भूमिका निभानी पड़ती थी। जागीर या मेनर के नौकरों से काम लेना उनका मुख्य कार्य था। दूध देने वाले पशुओं, बगीचों व रसोईघर की देखभाल में उनका दिन व्यतीत होता था। कढ़ाई-बुनाई का काम करने वाली महिलाएँ कई बार तो मेनर की रक्षा के लिए शस्त्र तक धारण कर लेती थीं। उच्च वर्ग की कई स्त्रियां घुड़सवारी, आखेट व शस्त्र संचालन में भी दक्ष होती थीं। पति को प्रसन्न रखना तथा शारीरिक सुन्दरता बनाए रखने के गुण उन्हें बचपन में सिखा दिए जाते थे लेकिन सामान्य जन या किसानों की स्त्रियों का जीवन बड़ा कष्टपूर्ण था। उन्हें दिनभर पति के साथ स्वामी की भूमि पर काम करना पड़ता था। वे भी पति के स्वामी की दासी होती थीं। उनका पूरा जीवन स्वामी की सेवा में ही व्यतीत होता था। उन पर सामन्त की पत्नी का भी नियंत्रण रहता था।

चित्र 6. मध्यकालीन यूरोप में संभ्रांत महिलाएं

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

7. मनोरंजन के साधन : मध्यकालीन यूरोप में त्यौहार व उत्सव उत्साह के साथ मनाए जाते थे। बड़े दिन का उत्सव नृत्य, संगीत व सामूहिक भोज द्वारा मनाया जाता था। ईस्टर के अवसर पर विशेष प्रकार के व्यंजन बनते थे। विशेष अवसरों पर गिरजाघर में जाना भी उत्सव ही था। इंग्लैण्ड में धनुर्विद्या में भी लोगों की रुचि होती थी। मध्यकालीन मेले भी लोगों के मनोरंजन का स्रोत थे। यहां एक ओर सामान खरीदा जाता तो वहीं दूसरी ओर बाजीगर व जादूगर अपना खेल दिखाते थे। गीत-संगीत में प्राय उच्च वर्ग के लोग ही रुचि रखते थे। उच्च वर्ग के विवाह के अवसर पर गीत-संगीत सामान्य जन को मनोरंजन के अवसर प्रदान करता था। सर्दियों में स्केटिंग का खेल लोकप्रिय था। मछली पकड़ना भी मनोरंजन का साधन था।

चित्र 7. मध्यकालीन यूरोप में उत्सव

8. सामरिकता : युद्ध मध्यकालीन यूरोपीय जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। मध्यकालीन यूरोप में योद्धा वर्ग के लोग नाईट कहलाते थे। इनका आधा जीवन युद्धों में तथा शेष आधा जख्मों को सहलाने में व्यतीत होता था। नाईट बनाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता था। सामान्यत: प्रत्येक सामन्त अपने पुत्र को यह प्रशिक्षण दिलाता था। नाईट बनने वाले बालक को किसी नाईट की उपाधि प्राप्त किए सामन्त के पास रहकर घुड़सवारी, वीरता व शस्त्र चलाने का प्रशिक्षण प्राप्त करना होता था। उसकी शिक्षा पूर्ण होने पर एक उत्सव का आयोजन किया जाता जिसमें प्रशिक्षु को नाईट की उपाधि प्रदान की जाती थी। मध्यकालीन यूरोप में सामन्तों के बीच संघर्ष साधारण बात थी। इस संघर्ष में सबसे अधिक भूमिका इन 'नाईट' की होती थी। नाईट ढाल, शिरास्त्राण, भाला, बर्छी, चाकू व मुगदर रखता था। वह जिरहबख्तर भी धारण करता था। वह एक घुड़सवार योद्धा होता था, जो युद्ध में निर्णायक भूमिका निभाता था। युद्ध में मरना या मारना उसकी वीरता का परिचायक था। युद्धों के दौरान कई बार दो नाईट या योद्धाओं के युद्ध भी होते थे।

नाईट : एक उपाधि। मध्यकाल में यह उपाधि घुड़सवार योद्धा प्राप्त करते थे। यह वीरता व अत्याचारों से रक्षा का प्रतीक थी। यह उपाधि किसी नाईट से ही उसका शिष्य बनकर ही प्राप्त की जाती थी। नाईट बनने के लिए एक युवक को किसी नाईट के अधीन अनुशासित जीवन जीना पड़ता था। उसे युद्ध कौशल सिखाए जाते ताकि वह लोगों की अत्याचारों से रक्षा कर सके। स्त्रियों, वृद्धों का सम्मान व शूरवीरता की भावना भरना प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य होता था। सफलतापूर्वक प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले घुड़सवार को नाईट की उपाधि दी जाती थी।

चित्र 8. घुड़सवार नाईट

©CBSE Not to be republished

9. **शिक्षा :** मध्यकालीन समाज व संस्कृति का मूलाधार ईसाई मत ही था। लोगों की ईसाइयत में पूर्ण आस्था इसलिए थी क्योंकि वे यह मानते थे कि उन्हें मुक्ति केवल इसका पालन करने से ही प्राप्त होगी। भाषा व साहित्य का अध्ययन कोई विद्वान इसी विचार से प्रेरित होकर ही करता था कि उसे ईसाइयत के विचारों को समझने में सहायता मिले। यूरोप में अधिकांश सामन्त अपना नाम तक नहीं लिखना जानते थे। उनकी रुचि युद्ध विद्या में थी शिक्षा के प्रति वे उदासीन थे। सामन्त लिखने का काम अपनी शान के विरुद्ध मानते थे। प्राथमिक शिक्षा पर चर्च का आधिपत्य था। अधिकतर चर्च व मठों के साथ एक विद्यालय होता था। इनमें वे ही बालक पढ़ते थे जिन्होंने पादरी या भिक्षु जीवन अपनाने का व्रत लिया हो। कई विद्यालय अल्पशुल्क लेकर दूसरे छात्रों को भी प्रवेश दे देते थे। पाठ्यक्रम सरल था। यहां वर्णमाला के अभ्यास के बाद लैटिन भाषा में लिखित प्रार्थना पुस्तकों का पाठ कराया जाता था। उस समय में लैटिन जीवन्त भाषा थी, जिसे पादरी व हर पढ़ा लिखा व्यक्ति बोलता था। स्थानीय बोलियों जैसे : अंग्रेजी, फ्रैंच आदि का पुस्तकीय भाषा के रूप में चलन नहीं हुआ था। विद्यालय के अनुशासन कठोर थे। गलती करने पर छात्र को दण्ड मिलता था। आम जनमानस की शिक्षा की स्थिति दयनीय थी। अत: समाज में अंधविश्वास का बोलबाला था। ग्रामीणों के लिए धर्म व संस्कार में अभिन्न सम्बन्ध था। गिरजाघरों तक लोग लम्बी यात्राएं करके इसलिए पहुंचते थे कि किसी विशेष संत के अवशेषों को स्पर्श करने या देखने से उनके रोग दूर हो जाएंगे। समाज में कर्मकांड, तंत्र मंत्र व जादू टोने का प्रचलन था।

मध्यकालीन यूरोप के विश्वविद्यालय

- बोलाग्ना विश्वविद्यालय (इटली)
- पेरिस विश्वविद्यालय (फ्रांस)
- ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय (इंग्लैंड)
- कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय (इंग्लैंड)
- विटेनबर्ग विश्वविद्यालय (जर्मनी)

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के इच्छुक विद्यार्थी पेरिस, ऑक्सफोर्ड, बोलाग्ना, विटेनबर्ग आदि विश्वविद्यालयों में पहुंचते थे। चिकित्सा अथवा कानून की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भी इन विश्वविद्यलायों में प्रविष्ट होना पड़ता था। विश्वविद्यालयों के छात्रों का जीवन कठिनाईपूर्ण था। उन्हें अपने आवास का प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता था। अनेक छात्रों को अपने परिवारों से बहुत मामूली आर्थिक सहायता मिलती थी। विश्वविद्यालयों के स्नातकों का दिन सुबह जल्दी आरम्भ हो जाता था। शीत जल से स्नान कर कुछ छात्र थोड़ा बहुत भोजन खा लेते थे। अधिकांश बिना कुछ खाये ही पढ़ने चले जाते थे। सारा दिन अध्ययन तथा वाद-विवाद में व्यतीत कर के रात्रि भोजन के समय लौटते थे। कक्षा में कुर्सी पर केवल शिक्षक बैठता था तथा शिक्षार्थी शिक्षक के सामने ज़मीन पर बैठते थे। लोग धर्म परायण थे। उनमें मुक्ति की इच्छा प्रबल थी। ईश्वर तथा उससे संबधित सभी बातों का अध्ययन धर्म शास्त्र के अंतर्गत आता था। ईश्वर और धर्म के क्षेत्र में तर्क के लिए ज्यादा स्थान नहीं था।

©BSEH, Bhiwani Not to be Printed

मूल रूप से मध्यकालीन यूरोपीय समाज में ईसाई धर्म का अत्याधिक प्रभाव था। चर्च की शक्ति व संपत्ति में आपार वृद्धि हुई थी जिससे उच्च वर्ग के पादरी विलासी, अनैतिक एवं भ्रष्टाचारी हो गए। यद्यपि चर्च ने ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में मुख्य भूमिका निभाई लेकिन शिक्षा धर्म केन्द्रित थी। सामंतवाद ने यूरोप में अपने पांव फैलाएं तथा यूरोपीय समाज पर सामंतों का प्रभाव बढ़ा। किसानों की स्थिति दयनीय थी। स्त्रियों को भी समानता का दर्जा प्राप्त नहीं था। यूरोप का समाज अंधकार युग में था।

भारतीय समाज

मध्यकाल में भारतीय समाज की संरचना बड़ी जटिल हो गई थी। तुर्कों के भारत पर आक्रमण के बाद मध्य एशिया से जीविका की तलाश में यहां बड़ी संख्या में लोग आए। उनमें से अधिकांश ने भारत में रहना आरम्भ कर दिया। वे भारतीय समाज का अंग बन गए लेकिन अपनी पहचान अलग बनाए रखने में भी सफल हुए। इन लोगों में बड़ी संख्या में ऐसे लोग थे जिनका धर्म या पंथ यहां के मूल नागरिकों से भिन्न था। इनके आगमन से भारतीय समाज में जटिलता आई। अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित थी इसलिए सामाजिक संरचना में किसान का महत्वपूर्ण स्थान था। यहां का समाज ग्रामीण था जिसमें जमींदार के अतिरिक्त किसानों की अनेक श्रेणियां थीं। शहरी वर्ग भी अनेक वर्गों में बंटा था, जिसमें व्यापारी, कारीगर, बुद्धिजीवी लोग शामिल थे। धार्मिक व सामाजिक दृष्टि से इस समाज में अनेक वर्ग थे :

क) शासकीय वर्ग : इसमें एक वर्ग वह था जो शाही शक्ति या केन्द्रीय सत्ता का प्रतिनिधित्व करता था। दूसरा वर्ग उन स्थानीय शासकों, सरदारों या भू-स्वामियों का था जो स्थानीय शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता था। यह शासकीय वर्ग शासकीय कार्यों में संलग्न था। शासकों के साथ सत्ता में भागीदारी रखता था तथा ऊँचा वेतन प्राप्त करता था। यूरोपीय सामन्तों की तरह ये भूमि के मालिक तो नहीं थे लेकिन प्रभावशाली जरूर थे। पूर्व मध्यकाल में सत्ता पर नियंत्रण स्थानीय शासकों का था, लेकिन दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद केन्द्रीय सत्ता पर तुर्कों के आधिपत्य ने इनको दूसरी श्रेणी में पहुँचा दिया था।

मुगलकाल में भी इनकी यही स्थिति बनी रही। इस शासकीय वर्ग में एक ऐसा वर्ग भी था जो गाँव में रहता था। जिसको शासकीय अधिकार प्राप्त थे। यह वर्ग भू-स्वामियों का वर्ग था। ये बड़ी भूमि के स्वामी थे तथा राज्य इन्हें बड़े क्षेत्रों से लगान या कर एकत्र करने का दायित्व भी सौंप देता था, जिसके बदले में ये राजा से पारिश्रमिक भी प्राप्त करते थे। ये भू-स्वामी ग्रामीण स्तर पर शीर्ष स्थिति में थे। ये सेना रखते थे। इनके अपने किले होते थे जो दुर्ग रक्षा के साथ-साथ इनकी प्रतिष्ठा के भी प्रतीक थे। देश के विभिन्न भागों में ये अलग-अलग नामों से जाने जाते थे, जैसे नायक, राय, चौधरी इत्यादि। शहरी अभिजात की तुलना में इनकी आमदनी सीमित थी। ये सामान्य किसानों की तरह रहते थे। मध्यकाल में एक शक्तिशाली ग्रामीण भू-स्वामी केन्द्रीय शक्ति के लिए चुनौती समझा जाता था।

©RSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

मवासात : अनेक किसान न तो सरकार को कर देते थे और न ही सरकार का कोई आदेश मानते थे। सेना द्वारा आक्रमण किए जाने की स्थिति में वे लोग जंगलों, पहाड़ी प्रदेशों, मरुभूमि आदि दुर्गम स्थानों पर पलायन कर जाते थे। ऐसे क्षेत्र समकालीन विवरणों में मवास अथवा मवासात के नाम से जाने जाते थे।

शासकीय वर्ग : शासकीय वर्ग में विभिन्न राज्यों के बड़े पदाधिकारी और जमींदार शामिल थे। बड़े राज्य के पदाधिकारियों की आय का साधन राज्य द्वारा निर्धारित होता था या तो वे नगद वेतन प्राप्त करते थे या किसी बड़े क्षेत्र की भूमि से कर एकत्र करने का अधिकार प्राप्त करते थे। जिस क्षेत्र के भूमिकर का अधिकार इन्हें सौंपा जाता था वह क्षेत्र 13वीं से 15वीं सदी के बीच 'इक्ता' कहलाती थी तथा वही क्षेत्र 15वीं से 18वीं शताब्दी के बीच 'जागीर' कहलाने लगा था।

जमींदार : मध्यकाल में स्थानीय शासक वर्ग जिसे परम्परागत रूप से शासन करने के अधिकार प्राप्त थे। जिस क्षेत्र पर उनका अधिकार मान्य होता था वह उनकी जमींदारी कहलाती थी। जमीदारों के रूप में उन्हें क्षेत्र में रहने वाली जनता पर शासकीय अधिकार प्राप्त हो जाता था।

ख) धार्मिक वर्ग : मध्यकाल में भारत में हिन्दुओं के साथ-साथ मुसलमान भी रहते थे। इन दोनों धर्मों में एक वर्ग ऐसा था, जो धार्मिक क्रियाकलापों से अपनी जीविका चलाता था। मुसलमानों में इस वर्ग को उलेमा वर्ग कहा जाता था। अध्ययन, अध्यापन के साथ-साथ ये वर्ग धार्मिक क्रिया-कलापों में संलग्न रहते थे। मस्जिद के धार्मिक कार्य करने वाले मौलवी, मदरसों एवं मकतबों के शिक्षक, न्यायालयों के न्यायाधीश इसी वर्ग से आते थे। इन्हें राजकीय संरक्षण प्राप्त था। राज्य की ओर से इन्हें अनुदान भी दिये जाते थे। ये मुस्लिम धर्म के धार्मिक ग्रंथों के जानकार होते थे। हिन्दुओं में ब्राह्मणों का ऐसा ही एक वर्ग था। धार्मिक क्रियाकलापों का कार्य हिन्दू समाज के लिए ब्राह्मण ही करते थे। मन्दिर के धार्मिक क्रियाकलाप और पाठशालाओं में शिक्षा देना इनका मुख्य काम था, लोग इन्हें दान देते थे। ये हिन्दू धार्मिक ग्रंथों के विद्वान होते थे। भारत के हर गांव में प्राय: एक ब्राह्मण का घर होता था। गांव के सभी धार्मिक कार्य इन्हीं द्वारा सम्पन्न कराये जाते थे। हिन्दुओं में ब्राह्मण तथा मुसलमानों में उलेमा रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह सम्पन्न करवाते थे।

उलेमा : उलेमा फारसी भाषा के शब्द आलिम का बहुवचन है। आलिम मूल रूप से इल्म से बना है जिसका अर्थ ज्ञान होता है अर्थात् इल्म रखने वाला आलिम होता है। मध्यकाल में मुस्लिम समाज के विद्वान लोगों का यह मुख्य वर्ग था।

मकतब : मकतब एक प्रकार का विद्यालय होता था जिसमें विद्यार्थी अक्षर ज्ञान के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा प्राप्त करता था।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

बलुतेदारः मध्यकाल में ग्रामीण सेवादारों का वर्ग जो काम के बदले फसल का एक भाग प्राप्त करते थे। महाराष्ट्र के गांव में इनकी संख्या 12 होती थी, इनमें सुनार, कुम्हार, बढ़ई, लुहार, कोली (नाव चलाने वाला) आदि शामिल थे। वर्षभर अपनी सेवा के बदले फसल आने पर ये उसका एक हिस्सा प्राप्त करते था।

मध्यकाल में स्थानीय शासकीय वर्ग शासकीय कार्यों में अपनी भागीदारी स्थापित कर चुका था। बड़ी संख्या में स्थानीय शासकीय वर्ग के लोगों नें राजकीय पद प्राप्त किए।

नायक	–	दक्षिण भारत
राय	–	दक्षिण भारत
चौधरी	–	उत्तरी भारत
राणा	–	राजस्थान

ग) व्यापारी व दुकानदार : समाज में व्यापारी व दुकानदार का एक प्रमुख वर्ग था। भारत में सम्पन्न व्यापारियों का एक विशाल वर्ग था। उनमें से कुछ तो उस समय विश्व के सबसे धनी व्यापारियों में से थे। कुछ व्यापारी वर्ग अन्तर्राष्ट्रीय तथा अंतर्क्षेत्रीय व्यापार करते थे तो कुछ स्थानीय फुटकर व्यापार करते थे। क्षेत्रीय व्यापार करने वाले लोग सेठ, वोहरा आदि कहलाते थे जबकि शेष, व्यापारी या बनिक कहलाते थे। उस समय व्यापारी किसी एक जाति या धर्म का नहीं होता था। राजस्थान के व्यापारी मारवाड़ी कहलाते थे। भारत के बन्दरगाह वाले नगरों में बड़े धनी व्यापारी रहते थे। धनी होने के बावजूद ये व्यापारी अपने आपको निर्धन दिखाने का प्रयास करते थे ताकि वे लूटमार व राजकीय शोषण से बचे रहें। साधारणतया व्यापारी अपने घर की ऊपरी मंजिल पर रहते थे तथा नीचे उनकी दुकान होती थी। दिल्ली में व्यापारियों के दो मंजिले मकान भी थे। व्यापारी ही दुकानदार होते थे कई बार ये ही सूदखोरी का काम करते थे तथा ब्याज पर धन देते थे।

दुकानदारों व व्यापारियों के अतिरिक्त छोटे राजकीय अधिकारी भी थे जो राज्य से पारिश्रमिक प्राप्त करते थे।

घ) कृषक वर्ग : मध्यकालीन भारतीय समाज में कृषकों का एक बड़ा वर्ग था, जो पूर्ण समाज के भरण-पोषण का दायित्व वहन करता था। इसकी स्थिति यूरोपीय कृषक की तरह दयनीय थी। भारत में इनके भी कई वर्ग थे। देश के विभिन्न भागों में इनकी अनेक जातियां थीं। इस वर्ग में एक श्रेणी वह थी जो अपनी भूमि पर स्वयं खेती करती थी। 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में इसे 'खुदकाश्त' किसान कहा जाता था जो अपनी भूमि पर स्वयं काश्त या खेती करता था। यह राजा को निर्धारित कर देता था। दूसरी श्रेणी 'पाहीकाश्त' किसानों की थी। 'पाही' का अर्थ ऊपरी अथवा बाहरी होता है। अर्थात् पाहीकाश्त किसानों से अभिप्राय उन किसानों से था जो दूसरे गांव में जाकर खेती करते थे तथा वहां उनकी अस्थाई झोंपड़ियां होती थीं। पाहीकाश्त किसानों के अधिकार में उतनी ही जोत होती थी जितनी पर वह केवल अपने परिवार के श्रम का उपयोग करके खेती कर सकता था। मध्यकाल में तीसरी श्रेणी

उन किसानों की थी जिनकी अपनी स्वयं की भूमि नहीं होती थी तथा वे किसी भू-स्वामी की भूमि पर खेती करते थे तथा उपज का एक हिस्सा प्राप्त करते थे। इन्हें 'रैय्यती' या 'मुज़ारियान' कहा जाता था। इन किसानों की स्थिति शोचनीय थी। राज्य की आय का बड़ा स्रोत भूमि-कर ही था तथा इसी भूमि-कर से ही राज्य अपने अधिकारियों को बड़े वेतन देता था किसान जिसका विरोध भी नहीं कर सकते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में भू-स्वामी, किसान तथा किसान के अन्य सहयोगी कारीगरों जैसे बढ़ई, नाई, चर्मकार, रस्सी बांटने वाले, लौहार, माली, ढोलची इत्यादि ये सभी ग्राम समुदाय का हिस्सा थे।

किसान

मध्यकाल में समकालीन दस्तावेजों में किसानों की अनेक श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। इतिहासकारों के अनुसार मुख्य रूप से इन्हें तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है :

- **खुदकाश्त किसान :** वे किसान जिनके पास ज़मीन का मालिकाना अधिकार होता था अर्थात् वे जिस ज़मीन पर अपने हल-बैल के साथ खेती करते थे वह कानूनन उनकी ही होती थी।
- **पाही काश्त:** ऊपरी या बाहरी किसान।
- **मुज़ारियाँ :** मुज़ारियाँ या मुजारे वे कृषक होते थे जो किसी बड़े ज़मींदार की भूमि पर खेती करते थे उन्हें उपज का एक हिस्सा प्राप्त होता था।

ड.) स्त्रियाँ : लड़की का विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया जाता था। उनकी शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं होती थी यद्यपि हमें कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ संभ्रात परिवार की महिलाएं पढ़ना-लिखना, घुड़सवारी इत्यादि का शौक रखती थी। विवाह के उपरांत उनका पूरा जीवन घर की चारदीवारी में ही व्यतीत होता था। यद्यपि राजपरिवार की कुछ स्त्रियों ने अनेक अवसरों पर अग्रणी भूमिका निभाई, जैसे- रानी नायकी देवी व रानी दुर्गावती ने स्वयं आगे बढ़कर आक्रमणकारियों का सामना करने के लिए सेना का संचालन किया। अनेक उदाहरण ऐसे मिलते हैं जब आक्रांन्ताओं ने किसी शासक को अपनी पुत्री की डोली विजेता शासक के यहां भेजने पर विवश किया हो। बाल-विवाह प्रथा भी मध्यकाल में प्रचलन में थी। शासक कई शादियां करते थे। मुस्लिम शासकों के हरम में अनेक पत्नियों के अतिरिक्त अनेक अवैध पत्नियां रहती थीं। हरम में बड़ी संख्या में दासियां भी रखी जाती थीं। सती-प्रथा का प्रचलन मध्यकाल में बढ़ गया था। शासकीय या शासक वर्ग की अनेक पत्नियां इस प्रथा का अनुसरण करती थीं। इसी काल में भारत में 'जौहर प्रथा' का भी प्रचलन हुआ। इस

चित्र 9. शाही हरम का दृश्य

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

काल में पर्दा प्रथा का प्रचलन भी बढ़ गया था। स्त्रियों को घर की चारदीवारी में ही सुरक्षित समझा जाता था। वहाँ भी वे किसी अनजान व्यक्ति के सामने नहीं आती थीं। यहाँ तक की शासकीय परिवार की महिलाएं भी पर्दे में रहती थीं। यद्यपि मध्यकाल में कुछ स्त्रियों ने पर्दा प्रथा को त्यागने का साहस किया था, इनमें रज़िया सुल्ताना तथा मीराबाई का नाम उल्लेखनीय है। मीराबाई ने पर्दा त्याग कर अपने जीवन को ईश्वर भक्ति को समर्पित कर दिया था तथा रज़िया सुल्ताना ने पर्दा त्याग कर दिल्ली सल्तनत का सिंहासन सम्भाला था। आमजन की स्त्रियों की स्थिति अधिक शोचनीय थी। उन्हें अनेक प्रकार के काम करने पड़ते थे। लगभग सभी वर्गों की स्त्रियां कताई का काम करती थीं। बंगाल की जो मलमल मध्यकाल में विश्व प्रसिद्ध थी, उसका धागा स्त्रियों द्वारा ही बनाया जाता था।

चर्चा करें
उपरोक्त दोनों चित्र महिलाओं की स्थिति के बारे में क्या जानकारी देते हैं?

चित्र 10. महिला कारीगर

च) दास : मध्यकाल में भारत में दास प्रथा का बोलबाला था। अधिकतर युद्धबंदियों व कर न दे पाने वालों को दास बना लिया जाता था। गोआ और दिल्ली में दासों की बड़ी मंडियां लगती थीं। स्त्री, पुरुष व बच्चे सभी दासों में सम्मिलित थे। दासों का धर्म परिवर्तन कराकर उन्हें मुस्लिम बनाकर उनसे विभिन्न सेवा कार्य जैसे– घरेलू कार्य, पीकदान उठाना, छत्र उठवाना, अंगरक्षक कार्य इत्यादि करवाए जाते थे। इनकी दशा अत्यंत शोचनीय थी। मुगलकाल में अकबर ने युद्धबंदियों को दास बनाने की प्रथा को बन्द कर दिया था।

छ) कारीगर : मध्यकालीन भारत में कारीगरों का भी एक वर्ग था, जो अपने कार्य में बड़ा दक्ष था। मध्यकाल में भारत में भवन निर्माण का एक बड़ा कार्य था, जिसमें बड़ी संख्या में कारीगर काम करते थे। इसके अतिरिक्त गांव व नगरों में अनेक कारीगर वस्तु निर्माण के कार्य में लगे होते थे। ये आमतौर पर जातियों के रूप में संगठित होते थे कपड़ा उद्योग एक ऐसा उद्योग था, जिसमें बड़ी संख्या में कारीगर शामिल होते थे। कागज बनाने के उद्योग में भी बड़ी संख्या में दक्ष कारीगर काम करते थे। बड़ी संख्या में कारीगर कच्चे रेशम को अटेरने व नील बनाने का भी काम करते थे। ग्रामीण कारीगर मुख्यत: अपने घर में ही काम करते थे जैसे जुलाहे के परिवार में स्त्रियां व बच्चे कपास से बिनौले अलग करते व सूत कातते जबकि पुरुष कपड़ा बुनते थे। मुख्य रूप से इन कारीगरों को दो भागों में बांट सकते हैं, एक वे ग्रामीण कारीगर जो साल में कुछ महीने ही काम करते जैसे तेली, गुड़ बनाने वाले, नील तैयार करने वाले तथा दूसरे वे जो पेशेवर कारीगर थे जिन्हें व्यापारी कच्चा माल उपलब्ध करवा कर तथा अग्रिम धन देकर वस्तु निर्माण का कार्य करवाते थे। इन कारीगरों में जो अपने काम में दक्ष हो जाते, दूसरे कारीगर उनसे काम सीखने के लिए उनके अधीन काम करते थे। मध्यकालीन भारतीय समाज

में ये वही कारीगर थे जिनकी बनाई वस्तुओं की पश्चिमी जगत में बहुत अधिक मांग थी। इसी मांग के चलते यूरोपीय व्यापारी भारत से व्यापार करने के नए मार्ग तलाशने लगे।

ज) शिक्षा, साहित्य एवं मनोरंजन : मध्यकाल में भारत की प्राचीन शिक्षा के प्रमुख केन्द्र नालन्दा, तक्षशिला, मथुरा, गया, विक्रमशीला, उज्जैन आदि अवनति की ओर अग्रसर हो गए। नालन्दा विश्वविद्यालय को तो आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी ने आग के हवाले कर दिया। मंदिरों को मिलने वाला अनुदान बंद हो गया और अनेक मंदिर तोड़ दिए गए। इससे भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं शिक्षा को भारी आघात लगा। फिर भी गुरुकुल पद्धति के आधार पर प्राथमिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार सम्पूर्ण भारत में होता रहा। सुल्तानों एवं मुगल शासकों ने मदरसों एवं मकतबों को दिल खोलकर दान देकर फारसी और अरबी भाषा को प्रोत्साहन दिया। साथ-साथ ही विजय नगर जैसे कई क्षेत्रीय शासकों ने संस्कृत एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं की शिक्षा को प्रोत्साहित किया। मध्यकाल में विभिन्न भाषाओं के साहित्य का भी विकास हुआ जिसमें मुख्य भूमिका भक्त संतों की रही। कल्हण की राजतरंगिनी, चन्दरबरदाई की पृथ्वीराज रासो, अमीर खुसरो का तुगलकनामा, तुलसीदास की रामचरितमानस, मलिक मोहम्मद जायसी की पदमावत्, सूरदास की सूरसागर, अबुल फज़ल की अकबरनामा इत्यादि इस काल की प्रमुख रचनाएं हैं। मध्यकाल में भारत में मनोरंजन के साधनों में मुख्यत: संगीत, नृत्य, शिकार, कुश्ती, मल्लयुद्ध, जानवरों की लड़ाइयाँ, शतरंज इत्यादि थे। तीज, त्यौहार एवं उत्सवों से भी मनोरंजन होता था।

चित्र 11. कारीगर द्वारा बुना कपड़ा

मध्यकालीन भारतीय वस्त्र उद्योग उन्नत दशा में था। विदेशों में भारतीय कपड़े की बड़ी मांग थी। यही कारण था कि विदेशी भारतीय मसालों के साथ कपड़े के व्यापार में भी लाभ कमा रहे थे। भारत के पूर्वी व पश्चिमी तटों से यह कपड़ा यूरोप के देशों में पहुंचता था। मध्यकाल में ढाका की मलमल यूरोपीय बाज़ारों में आकर्षण का केन्द्र थी।

धर्मांतरण : मध्यकाल में भारत में आक्रमणकारियों, व्यपारियों एवं सूफियों के साथ इस्लाम का आगमन हुआ। 636 ईस्वीं से 1761 ईस्वीं तक भारत पर विदेशी आक्रमणकारियों के लगातार आक्रमण होते रहे। ये आक्रमणकारी अपने साम्राज्य विस्तार, धन की लूट तथा इस्लाम का प्रसार आदि उद्देश्यों से प्रेरित थे। लेकिन उन्हें भारत की जनता के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। धर्मांतरण के लिए तलवार एवं अग्नि की नीति असफल रही तो लोभ एवं लालच का सहारा देकर, जज़िया लगाकर धर्मांतरण का प्रयास किया गया। लेकिन इसमें उन्हें आंशिक सफलता ही मिल पाई। 1800 ईस्वीं तक अविभाजित भारत (भारतीय उपमहाद्वीप) की कुल जनसंख्या में मुस्लिम एवं हिन्दुओं का अनुमानित अनुपात 1:7 था। अर्थात् 15 प्रतिशत से भी कम आबादी का ही धर्मांतरण हो पाया।

© RSEH, Bhilwara not to be Reprinted

झ) भक्ति आंदोलन : मध्यकालीन भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता भक्ति आंदोलन का प्रचार-प्रसार था। मध्य युग में भारतीय समाज को कर्मकाण्डों, अंधविश्वासों एवं भेद-भावों से मुक्त कर उसके आत्मविश्वास एवं आत्मसम्मान को जागृत करने के लिए भक्ति आंदोलन का उदय हुआ। विभिन्न संतों जैसे रामानंद, गुरु नानकदेव, चैतन्य महाप्रभु, दादू दयाल, नामदेव, तुकाराम, रविदास, कबीरदास, मीराबाई, सूरदास, रसखान ने अपनी वाणी से समाज को कुरीतियों के विरुद्ध जागृत किया। कुछ सूफी संतों जैसे निज़ामुद्दीन औलिया, शेख फरीद, सलीम चिश्ती आदि ने अपनी वाणी से समाज में सद्भाव की भावना उत्पन्न की।

आओ फिर से याद करें :

1. यूरोप में शासकीय वर्ग के मुख्य काम क्या थे?
2. यूरोप में कृषकों की दशा कैसी थी?
3. भारत की सामाजिक संरचना किस प्रकार की थी?
4. मध्यकाल में भारत में किसानों दशा कैसी थी?
5. मध्यकाल में भारत में दास प्रथा पर निबंध लिखें।

उपयोगी शब्द
पादरी, नाइट, मारवाड़ी, मवासात, खुदकाश्त, मलमल, बलुतेदार

आइये विचार करें :

1. मध्यकाल में भारत व यूरोप में किसानों की दशा में क्या अंतर था?
2. मध्यकाल में भारत व यूरोप में शासकीय वर्ग की स्थिति में क्या कोई भिन्नता थी?
3. मवासात से क्या अभिप्राय है?
4. मध्यकालीन भारत में धर्मांतरण पर चर्चा करें।

आओ करके देखें :

1. यूरोप के किसी भी देश की सामाजिक संरचना की जानकारी जुटाएं?
2. मध्यकाल में स्त्रियों की दशा आज स्त्रियों की दशा से कैसे भिन्न है? कक्षा में दो समूह बनाकर चर्चा कर बिन्दू लिखें।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

अध्याय - 5

ईसाइयत एवं इस्लाम : उदय व टकराव

ईसाइयत

ईसाइयत आधुनिक विश्व का एक बड़ा मत है। इसकी स्थापना ईसा की प्रथम शताब्दी में जीसस ने की, जिन्हें ईसा मसीह भी कहा जाता है। इस मत का उदय एशिया माइनर के फिलिस्तीन प्रदेश में हुआ था। इस प्रदेश में यहूदी लोग रहते थे। इसी क्षेत्र में नज़ारेथ नामक स्थान पर 6 ई. पूर्व में एक यहूदी परिवार में ईसा मसीह का जन्म हुआ। उनकी माता मरियम तथा पिता जोसेफ थे। उन दिनों फिलिस्तीन का प्रदेश रोमन सम्राट ओक्टेवियन सीजर के राज्य का अंश था। ईसा मसीह ने यहूदियों में नए सम्प्रदाय का प्रचार आरम्भ कर दिया। वह कहते थे कि हमें पृथ्वी को स्वर्ग बनाने का यत्न करना चाहिए तथा पृथ्वी पर स्वर्ग का राज्य स्थापित करना चाहिए। परमेश्वर सबका पिता है उसके सामने सब बराबर हैं। धीरे-धीरे बहुत से लोग ईसा मसीह के शिष्य बन गए और वे ईसाई कहलाने लगे। वे एक ईश्वर के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं को नहीं मानते थे। दूसरी ओर सम्राट सीजर ने रोम में निरंकुश राज्य की स्थापना कर दी। उसके साम्राज्य के लोग सम्राट की भी देवता के रूप में पूजा करने लगे। जनता उसे साक्षात देवता मानने लगी थी लेकिन ईसा मसीह अपने अनुयायियों में प्रचार करता था कि ईश्वर तो एक है और हमें अन्य देवताओं की पूजा नहीं करनी चाहिए। ईसा मसीह सम्राट की पूजा का विरोध करता था। साम्राज्य के अधिकारियों ने इसे देशद्रोह माना तथा ईसा मसीह को कैद कर लिया। उन पर ईश्वर का पुत्र कहलवाने के आरोप लगा दिए तथा उन्हें मृत्यु दण्ड दे दिया गया।

चित्र 1: ईसा मसीह को दर्शाता एक चित्र

ईसाइयत का प्रचार : जीसस के अनुयायी ईसाई कहलाते थे। जीसस के समय उनके मत का प्रसार केवल फिलिस्तीन में ही हुआ था। उनके उपदेश 'बाइबिल' नामक ग्रंथ में संग्रहीत किए गए। बड़ी संख्या में लोग ईसाई भिक्षु बन कर ईसाइयत का प्रचार करने लगे। जीसस का सादगीपूर्ण जीवन उनके लिए प्रेरक बन गया। धीरे-धीरे ईसाइयत का प्रसार फिलिस्तीन प्रदेश के बाहर भी होने लगा। ईसा मसीह के प्रमुख शिष्य संत पॉल तथा संत पीटर ने जीसस के मत का सबसे अधिक प्रचार किया। इनके प्रचार के कारण ईसाई मत अन्य स्थानों पर फैलने लगा।

सम्राट कान्स्टेन्टाइन तथा ईसाइयत : 306 ई. में सम्राट कान्स्टेन्टाइन रोम का सम्राट बना। इस समय रोमन साम्राज्य पर जर्मन जातियाँ आक्रमण कर रही थी। इनके आक्रमणों से साम्राज्य की दशा खराब हो रही थी। सम्राट

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

ने अनुभव किया की साम्राज्य की रक्षा के लिए जनता की सहानुभूति प्राप्त करना उपयोगी होगा। अतः उसने जनता में लोकप्रिय धर्म को स्वयं स्वीकार कर लिया जिससे उसे साम्राज्य की ईसाई जनता का समर्थन मिल गया। अब ईसाई मत रोमन साम्राज्य का संप्रदाय बन गया। राजकीय आश्रय पाकर ईसाइयत ने अपूर्व उन्नति की।

चित्र 2. सम्राट कान्स्टेन्टाइन पूरा जीवन ईसाइयों का विरोधी रहा। किन्तु विद्रोह का अंत करने के लिए उसने अपनी मृत्यु से कुछ समय पहले ही ईसाई मत अपना लिया था। इसे ईसाई इतिहास की एक अति महत्वपूर्ण घटना माना जाता है क्योंकि इसके बाद ईसाई मत रोमन साम्राज्य का धार्मिक मत बन गया। रोमन साम्राज्य की ताकत पाकर ईसाई मत पूरे संसार में प्रचार-प्रसार कर सका।

ईसाई मत की संस्थाएँ : ईसाइयत में अनुयायियों का उपासना घर गिरजाघर (चर्च) कहलाता है। चर्च में प्रार्थना के लिए एक पादरी की नियुक्ति की जाती है। ईसाई मत का प्रमुख पोप कहलाता है जो ईसाइयों का सर्वोच्च गुरु व पथ-प्रदर्शक होता है।

चित्र-3 : 15वीं शताब्दी में मार्टिन लूथर ने ईसाई पोप की निरंकुशता और ईसाई मत में फैले अंधविश्वास के खिलाफ आवाज़ उठाई। उसके अनुयायी प्रोटेस्टेंट कहलाए।

पाँचवीं सदी में रोमन साम्राज्य के पतन के बाद अराजकता के काल में लोगों ने अपनी भूमि चर्च को दान कर दी जिसके कारण गिरजाघर बड़ी-बड़ी जागीरों के स्वामी बन गये। गिरजाघर की सम्पत्ति के रख रखाव का दायित्व पोप का होता है। अतः उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई। रोमन साम्राज्य के पतन के बाद यूरोप में पोप के प्रभाव में बढ़ोत्तरी हुई। कालान्तर में ईसाई मत दो भागों में बंट गया था। एक सम्प्रदाय को रोमन कैथोलिक चर्च तथा दूसरे सम्प्रदाय को प्रोटेस्टेंट कहा जाता था। रोमन कैथोलिक चर्च के अनुयायियों का मानना है कि वेटिकन नगर में स्थित पोप ईसा मसीह का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी है। परम्परागत ईसाइयत में सुधार की प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रोटेस्टेंट मत का उदय पन्द्रहवीं शताब्दी में हुआ था। इसके प्रवर्तक मार्टिन लूथर माने

जाते हैं। यह सम्प्रदाय उदारवादी दृष्टिकोण का पक्षधर है। प्रारम्भ में दोनों ईसाई गुटों में खूनी झगड़े हुए, जिनमें लाखों लोगों की जानें गईं।

रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट में अंतर?

रोमन कैथोलिक मत	प्रोटेस्टेंट मत
➢ बाइबिल के साथ-साथ रोमन पोप को भी मानते हैं।	➢ [illegible]
➢ पोप सर्वोच्च है।	➢ पोप मान्य नहीं।
➢ ईश्वर तक केवल पोप के माध्यम से पहुँचा जा सकता है।	➢ ईश्वर तक पहुँचने के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं है।

इस्लाम

इस्लाम विश्व का एक महत्वपूर्ण मत है। इसका उदय सातवीं शताब्दी में अरब में हुआ था। इसके संस्थापक हज़रत मोहम्मद थे। इनका जन्म 570 ई. में अरब प्रायद्वीप के मक्का नामक नगर में हुआ। इनके पिता का नाम अब्दुल्ला तथा माता का नाम अमीना था। बचपन में ही हज़रत मोहम्मद के माता-पिता का देहांत हो गया था। उनका लालन-पालन उनके चाचा अबु तालिब ने किया। बचपन से ही वे चिन्तनशील प्रवृत्ति के थे। वयस्क होने पर वे अपने चाचा अबु तालिब के साथ व्यापारिक यात्राओं पर जाने लगे। 25 वर्ष की आयु में उनका विवाह खदीजा नामक एक धनी विधवा से हुआ जो आयु में उनसे लगभग 15 वर्ष बड़ी थी।

अरब के लोग उस समय बहु-देववाद में विश्वास करते थे। हज़रत मोहम्मद प्रार्थना में लीन रहने लगे। मक्का के पास हीरा की पहाड़ी गुफा में बैठकर वे ध्यानमग्न होकर प्रार्थना करते थे। मुसलमानों का विश्वास है कि यहीं ध्यान करते हुए मोहम्मद साहब को एक दिन जिब्राईल नामक देवता के माध्यम से अपने ईश्वर या अल्लाह का आदेश मिला कि वे सत्य का प्रचार करें। उन्होंने जो उपदेश मक्का के लोगों को दिया वही इस्लाम कहलाया।

इस्लाम का प्रचार : हज़रत मोहम्मद को अल्लाह का पैगम्बर माना गया जिसे अल्लाह ने पृथ्वी पर संदेश प्रचारित करने के लिए भेजा है। उन्होंने मक्का के बहु-ईश्वरवादी लोगों को संदेश दिया कि ईश्वर एक है और मैं उसका पैगम्बर (दूत) हूँ। अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी पूजनीय नहीं है। उस समय वहाँ काबा में देवी देवताओं की मूर्तियों की पूजा होती थी। जब हज़रत मोहम्मद ने मूर्ति पूजा का विरोध किया तो मक्का के लोग उनके विरुद्ध हो गए। उनके विरोध के कारण उन्हें मक्का छोड़कर मदीना नामक नगर में जाना पड़ा। इस्लाम में यह घटना हिज़रत कहलाती है। यह घटना 622 ई. में हुई तथा इसी वर्ष से हिज़री सम्वंत का आरम्भ हुआ। मदीना में रहकर हज़रत साहब ने अपने मत का प्रचार किया।

चित्र 4: काबा - इस्लाम का पवित्र स्थल है

©RSEH, Bhiwani Not to be Republished

धीरे-धीरे अरब के लोग उनके अनुयायी बनते चले गये।

इस्लाम की शिक्षाएँ : इस्लाम में अल्लाह को ईश्वर माना जाता है तथा हज़रत साहब को उसका दूत माना जाता है। इस्लाम के मूलमंत्रों को कलमा कहा जाता है जिसके अनुसार अल्लाह के अतिरिक्त कोई भी पूजनीय नहीं है। इस्लाम का अनुयायी दिन में पाँच बार ईश्वर से प्रार्थना करता है जिसे नमाज़ कहा जाता है। नमाज़ का समय निर्धारित होता है। रमज़ान के पवित्र मास में इस्लाम के अनुयायी को व्रत रखना पड़ता है जिसे रोज़ा कहा जाता है। हज़रत साहब ने अपने मत का प्रचार किया तो मदीना के लोग उनके अनुयायी बन गये। इसके बाद उन्होंने मक्का पर हमला किया तथा उनको पराजित किया जिसके बाद उन्होंने भी इस्लाम स्वीकार कर लिया। 632 ई. में हज़रत साहब की मृत्यु हो गई। चार पवित्र खलीफ़ा बारी-बारी उनके उत्तराधिकारी बने। उनका मुख्य कार्य केवल इस्लाम का प्रचार करना था। धीरे-धीरे जहाँ खलीफ़ाओं की राजनैतिक सत्ता स्थापित होती गई वहाँ इस्लाम का प्रचार होता गया। ग्यारहवीं सदी तक इस्लाम यूरोप से लेकर एशिया के एक बड़े क्षेत्र में फैल गया। इनका कुल कार्यकाल 29 वर्ष (632 ई.-661 ई.) था। प्रथम खलीफ़ा अबूबक्र को छोड़कर शेष तीनों खलीफ़ाओं की उनके विरोधियों द्वारा हत्या कर दी गई।

चित्र-5: इस्लाम की पवित्र पुस्तक कुरान है जिसमें इस मत की प्रमुख शिक्षाएँ है। यह पुस्तक अरबी भाषा में लिखी गई है। इस्लाम अरबी भाषा को पवित्र भाषा मानता है। जैसे हिन्दू धर्म में संस्कृत को पवित्र भाषा माना जाता है।

ईसाइयत एवं इस्लाम का टकराव

मोहम्मद ने अरब जगत की विभिन्न जातियों को संगठित करके एक राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया। खलीफाओं के काल में उनका राज्य बड़ा साम्राज्य बन गया, जिसमें पर्शिया, इराक, आर्मेनिया, काशगर, तुर्किस्तान, एशिया माईनर, फिलिस्तीन, मिस्र, उत्तरी अफ्रीका व स्पेन शामिल थे। ईसाई मत का जन्म फिलिस्तीन प्रदेश में हुआ था। यह प्रदेश इस्लामी शासकों के अधीन आता था। आरम्भ में यहाँ ईसाई लोग शान्ति से रहते थे। यूरोप से बड़ी संख्या में ईसाई यहां पवित्र यात्राओं पर आते थे। पहले उन्हें तंग नहीं किया जाता था। 1071 ई. में तुर्कों ने मेंजीकर्ट की लड़ाई में बैजंटाईन साम्राज्य की सेना को हरा दिया। इस विजय के बाद फिलिस्तीन जाने वाले उस मार्ग पर मुसलमान तुर्कों का अधिकार हो गया जिस मार्ग से यूरोपीय लोग वहाँ की पवित्र भूमि पर जाते थे। ईसाई लोग ईसा मसीह के जन्म-स्थल की यात्रा करना सौभाग्य समझते थे लेकिन वहाँ जाने वाले मार्ग पर अब तुर्कों का अधिकार हो गया। तुर्क मध्य एशिया की जाति थी जिसने खलीफाओं की शक्ति दुर्बल होने के बाद अरब साम्राज्य के विभिन्न भागों पर अपनी सल्तनत स्थापित की।

©BSEH Bhiwani Not to be Republished

क्रूसेड

यरुशलम में रहने वाले ईसाइयों की स्थिति ग्यारहवीं सदी में बदतर हो गई थी। मुसलमानों ने ईसा मसीह की पवित्र समाधि नष्ट कर दी तथा वहाँ रहने वाले ईसाइयों को मार डाला। यरुशलम में रहने वाले बचे हुए ईसाई बंदी जीवन जी रहे थे। वे अपना उत्सव नहीं मना सकते थे। उन पर अनेक प्रकार के टैक्स लगा दिए गए थे। उनके घरों में भी कीचड़ फेंका जाता तथा विरोध करने पर भयंकर यातनाएँ दी जाती। कई बार उनकी हत्या कर उनकी संपत्ति छीन ली जाती थी। जबरन मुसलमान बनाया जाता था। फिलिस्तीन में ईसाइयों की स्थिति व तीर्थयात्रियों पर होने वाले अत्याचार की सूचनाएँ यूरोप पहुँचने लगी। अत: ईसाई जगत इसके प्रति उदासीन नहीं रह सकता था। अब पुण्यभूमि को मुसलमानों से मुक्त कराने व वहाँ की यात्रा को सुरक्षित बनाने पर यूरोप में विचार होने लगा। इसी विचार ने क्रूसेड को जन्म दिया।

ईसाइयत व इस्लाम के टकराव को 'क्रूसेड' कहा जाता है। यह टकराव ग्यारहवीं शताब्दी के अंतिम दशक से तेरहवीं शताब्दी के अंत तक यूरोप के ईसाइयों द्वारा फिलिस्तीन स्थित ईसाई धार्मिक स्थानों को मुसलमानों से आज़ाद कराने के लिए हुआ। सांप्रदायिक दृष्टि से यह टकराव दो मतों-ईसाई व इस्लाम के बीच हुआ। ऐतिहासिक दृष्टि से इस संघर्ष का प्रारंभ प्राचीन काल में यूनानियों व पर्शियनों के बीच युद्ध से हुआ। उन्नीसवीं व बीसवीं सदी में इसका स्थान ओटोमन-यूरोपियन संघर्ष ने ले लिया।

क्रूसेड आठ अभियानों के समूह को कहा जाता है। इनमें प्रथम चार प्रमुख क्रूसेड थे जबकि शेष चार सामान्य क्रूसेड कहे जाते हैं।

यूरोप में इस समय मुसलमानों के आक्रमणों से बैजन्टाईन सम्राट एलेक्सियस बड़ा परेशान था। वह इस संघर्ष में खुद को अकेला समझ रहा था। उसने यूरोपीय सामन्तों एवं पोप से मदद की गुहार लगाई। इसी समय पवित्र भूमि को मुसलमानों से छुड़ाने व सुरक्षित यात्रा मार्ग के प्रश्न पर पीटर द हरमिट यूरोप के लोगों को संगठित कर रहा था। कहा जाता है कि पीटर द हरमिट ने यरुशलम की यात्रा की थी। यरुशलम के ईसाई प्रमुख ने उसे यूरोप के लोगों के नाम पत्र दिए थे। ये पत्र लेकर वह रोम के पोप के पास पहुँचा व ईसाई धर्म स्थलों को मुसलमानों से मुक्त कराने के लिए युद्ध की तैयारी की अनुमति माँगी। वह यूरोप के देहाती व शहरी क्षेत्रों में घूम-घूमकर प्रथम क्रूसेड में शामिल होने के लिए लोगों को तैयार करने लगा।

पीटर द हरमिट के प्रयासों से यूरोप के लोग यरुशलम पर ईसाइयों के पुन: अधिकार के लिए तैयार हो रहे थे। सम्राट एलेक्सियस मुसलमानों के विरुद्ध पोप से सहायता मांग चुका था। अत: पोप ने 1095 में इस स्थिति पर विचार करने के लिए रोम में धर्म सभा बुलाई। 27 नवंबर 1095 को पोप ने सभा के सामने पूर्व में रहने वाले ईसाइयों की दुर्दशाएं, पुण्यस्थलों की मुसलमानों के द्वारा उपेक्षा व आक्रमण के कारण यूरोप की स्थिति को विस्तारपूर्वक रखा।

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

अगले दिन 28 नवंबर को युद्ध अभियान की रूपरेखा तैयार की गई। इसमें यह भी तय हुआ कि इस यात्रा में शामिल होने वाले लोग रंगीन कपड़े का क्रास अपने कोट पर लगाएंगे और इसी कारण उन्हें क्रूसेडर्स कहा जाएगा। संघर्ष में शामिल होने वालों की संपत्ति की रक्षा बिशप करेंगे। यरुशलम पहुँचने वाले या इस प्रयास में मारे जाने वालों के सारे पाप माफ कर दिए जाएंगे लेकिन यदि युद्ध से भाग गए तो ईसाई मत से बाहर निकाल दिए जाएंगे।

चित्र 6: यह चर्च इज़राइल में है, इस स्थान पर ईसा मसीह को सूली पर चढ़ाया गया था।

चार बड़े क्रूसेड

प्रथम क्रूसेड : 15 अगस्त 1096 का दिन आया और शासक, सामंत, बिशप, पुजारी, भिक्षु, अमीर-गरीब, स्त्री, बच्चे युद्ध के लिए यरुशलम की ओर बढ़ने को तैयार हो गए। पीटर द हरमिट के नेतृत्व में एक आकुल जन सैलाब इकट्ठा हो गया। वह एक अन्य नाईट वाल्टर के साथ अस्सी हजार अनुयायियों के साथ जर्मनी-हंगरी

चित्र 7: चित्र में पीटर द हरमिट द्वारा जनता को क्रूसेड यानि इस्लाम के खिलाफ युद्ध करके, पवित्र भूमि को मुसलमानों से आजाद करवाने के लिए भड़काया जा रहा है।

चित्र 8: क्रूसेडर के वस्त्रों पर क्रॉस का चिह्न रहता था, इसी के कारण वे क्रूसेडर कहलाते थे।

चित्र 9: 1096 में क्रूसेडर योद्धाओं को दिखाता हुआ, एक मध्यकालीन चित्र।

मार्ग से बेजन्टाईन साम्राज्य की राजधानी कुस्तुनतुनिया की ओर बढ़ चला।

जर्मन व फ्रांसिसी शासकों के प्रयासों से तीन लाख की सेना कुस्तुनतुनिया पहुंची जिसमें यूरोप के विभिन्न शासक भी शामिल थे। सेना कुस्तुनतुनिया से सीरिया की ओर बढ़ी जहां से वे येरुशलम तक पहुचंना चाहते थे। उनके अनेक दल थे। फ्रांस के शासक रेमंड के दल ने येरुशलम को जीत लिया।

दूसरा क्रूसेड : 1144 ई. में एडेसा नामक नगर पर मुसलमानों ने अधिकार कर लिया। यूरोप के ईसाइयों को पुन: येरुशलम की चिंता हुई। ईसाइयों की इसी चिंता ने यूरोप के विभिन्न भागों के शासकों को सेना बना येरुशलम की ओर जाने के लिए विवश किया। इस सेना में जर्मन और फ्रांस सम्राट भी शामिल थे। लेकिन यह सेना एशिया माइनर पार करते ही नष्ट हो गयी। केवल कुछ लोग ही येरुशलम पहुंचे। इस अभियान को ईसाइयत व इस्लाम का दूसरा संघर्ष कहा जाता है।

चित्र 10: दूसरे क्रूसेड को दर्शाता एक मध्यकालीन चित्र।

तीसरा क्रूसेड : ईसाइयों व मुसलमानों के बीच तीसरे संघर्ष का मुख्य कारण था मिस्र के सुल्तान की येरुशलम पर अधिकार करने की इच्छा। जब यह सूचना यूरोप पहुंची तो जर्मन, फ्रांस व इग्लैण्ड के शासक ने येरुशलम जाने का निर्णय किया। जर्मन सम्राट रास्ते में मर गया। इंग्लैंड के सम्राट ने मिस्र के साथ संधि कर ली जिसके अनुसार ईसाइयों को निर्विघ्न येरुशलम की यात्रा की सुविधा दिए जाने का वचन दिया गया।

चौथा क्रूसेड : 1202 में पोप इनोसेंट तृतीय के आह्वान पर एक बार पुन: येरुशलम की पवित्र यात्रा पर जाने के लिए यूरोप में सेना संगठित हुई। पोप का लक्ष्य था कि इस बार भूमध्य सागर को पार कर समुद्री मार्ग से येरुशलम जाया जाए। लेकिन दल में न तो अधिक लोग इकट्ठे हुए और न ही आवश्यक धन ही एकत्रित हो पाया इसलिए यह अभियान असफल हो गया। इन उपरोक्त चार अभियानों को ईसाइयत व इस्लाम के बीच में चार संघर्ष या क्रूसेड कहा जाता है। हालांकि इसके बाद भी चार बार और यूरोप के ईसाइयों ने येरुशलम की पवित्र भूमि को मुसलमानों से छुड़ाने के लिए प्रयास किए। लेकिन यह सभी प्रयास असफल हो गए।

चार छोटे क्रूसेड

- **पाँचवां क्रूसेड (1217-1221) :** पश्चिमी यूरोप के द्वारा येरुशलम को आजाद करवाने के लिए पाँचवां क्रूसेड छेड़ा गया।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

- **छठा क्रूसेड (1228-1229) :** पाँचवें क्रूसेड की असफलता के बाद यह अभियान छेड़ा गया, किन्तु इसमें बहुत कम ही लड़ाई हुई।
- **सातवाँ क्रूसेड (1248-1254) :** इस क्रूसेड में फ्रांस के राजा लुई नवम को मुस्लिम सेना ने बुरी तरह से परास्त किया।
- **आठवाँ क्रूसेड (1270) :** फ्रांस के राजा लूई नवम ने इस्लाम के खिलाफ क्रूसेड का ऐलान किया। यह क्रूसेड विफल रहा, क्योंकि लुई नवम की मौत हो गई और अभियान रुक गया।

ईसाइयत और इस्लाम में समानताएँ : यहूदी, ईसाई और इस्लाम, तीनों संप्रदाय एक ही स्रोत से निकले हैं। इन्हें अब्राहमी संप्रदाय भी कहा जाता है। इनमें कुछ मूलभूत समानताएँ हैं, जैसे :

1. तीनों का विश्वास है कि आत्मा का केवल एक ही जन्म होता है, और मृत्यु के बाद उसे या तो हमेशा के लिए स्वर्ग मिलता है, या नरक।
2. तीनों का विश्वास है कि एक दिन यह दुनिया खत्म हो जाएगी, और उस दिन उनको नरक और स्वर्ग बांटे जाएंगे।
3. ये तीनों ही संप्रदाय केवल अपने-अपने दृष्टिकोण को ही परम सत्य मानते हैं। केवल उनके ही मार्ग से ईश्वर तक पहुंचा जा सकता है क्योंकि ये मानते हैं कि केवल उनका ही मत सर्वोत्तम है। अत: ये दूसरों को भी अपने मत में लाने के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं।
4. ईश्वर स्वर्ग में रहता है।

संघर्ष के प्रभाव

अपने पवित्र स्थानों की रक्षा के लिए चले ईसाइयत व इस्लाम के इस संघर्ष के आरंभ मे बड़ा उत्साह था। आम लोग भी इसमें शामिल हो गए थे। पोप के आह्वान पर यूरोप के सभी वर्गों के लोग इसमें अपना योगदान देना चाहते थे लेकिन समय के साथ यह सांप्रदायिक उत्साह कम होता गया। इन अभियानों ने ईसाइयों को मुसलमानों के विरुद्ध यूरोप में संगठित कर दिया था। वह अपने पवित्र स्थानों पर अधिक दिनों तक कब्जा तो नहीं बनाए रख सके लेकिन यूरोप से वह मुसलमान शासकों की सत्ता का अंत करने में सफल रहे। ईसाइयों ने पुर्तगाल, स्पेन आदि क्षेत्रों से मुसलमानों की सत्ता को उखाड़ फेंका।

लगभग दो शताब्दियों तक चले ईसाइयत व इस्लाम के टकराव ने ईसाइयों को रणनीति बदलने पर विवश कर दिया। यूरोप के ईसाई अब मुसलमानों को आर्थिक हानि पहुंचाने के तरीके खोजने लगे। भारत या एशिया की वस्तुएं प्राप्त करने के नए रास्तों की खोज के प्रयास इसी दिशा में उठाए गए कदम थे। मध्यकाल में इन दोनों

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

ईसाइयत व इस्लाम के बीच टकराव के अनेक विश्वव्यापी प्रभाव पड़े। यूरोप के ईसाइयों का संपर्क अब बाहरी दुनिया से हुआ जिसके कारण वहां अनेक राजनैतिक सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन आए। मुसलमानों के साथ चले लंबे संघर्ष में यूरोप के अनेक सामन्तों की मौत हुई जिससे वहां सामंतवाद के अंत का आरंभ हो गया। राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। इस टकराव के कारण पोप की शक्ति में वृद्धि हुई, जिससे वह निरंकुश बन बैठा। बाद में पोप की शक्ति व निरंकुशता के विरुद्ध चर्च-सुधार आंदोलन चला।

ईसाइयत व इस्लाम के रक्त रंजित टकराव के बाद यूरोप में ईसाइयत के प्रचार के लिए शांतिपूर्ण तरीके खोजे गए। इस टकराव के कारण ही यूरोप में कई समाजिक बदलाव आए। दासों को स्वतंत्रता मिली। दो शताब्दियों के संघर्ष में सामन्तों के भाग लेने से उनकी जागीरों की देखभाल उनकी स्त्रियों ने की जिससे यूरोप में स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ। एशिया व अरब से संपर्क होने से यूरोप के लोगों के खान-पान, रहन-सहन, आभूषणों व साज-सज्जा में परिवर्तन आया। यूरोप के लोग अपने भोजन में एशियाई मसालों का प्रयोग करने लगे। यूरोप में नगरीकरण की प्रकिया भी तेज हुई। यूरोप के देश भू-मध्य सागर के माध्यम से होने वाले व्यापार से एशियाई वस्तुएं प्राप्त करने लगे। अब यूरोप में डोरी वाली धनुष व संदेश भेजने के लिए कबूतर का प्रयोग होने लगा। अब वहां बड़े-बड़े गोलाकार गिरजाघर बनने लगे।

दिशासूचक यंत्र के अविष्कार से समुद्री खोजों को बढ़ावा मिला। सर्वप्रथम 1492 ई. में कोलम्बस ने अमरीकी महाद्वीप खोजा। पुर्तगाल के नाविक वास्को डी गामा ने ऐसे मार्ग का पता लगाया जिससे अरबों की मध्यस्थता के बिना भी एशिया की वस्तुओं तक अपनी पहुंच बनाई जा सकती थी। भौगोलिक खोजों से ईसाइयों को उन क्षेत्रों की जानकारी मिली जहां बाद में उन्होने ईसाइयत का प्रचार किया। 1492 ई. के बाद अमरीकी महाद्वीप में ईसाइयत का फैलाव हुआ। ईसाइयत व इस्लाम के टकराव का तत्कालीन प्रभाव यह हुआ कि यूरोप में इस्लाम का प्रसार रुक गया। इस टकराव के कारण ईसाई सभ्यता को सुदृढ होने का मौका मिल गया। जिसके कारण बाद के समय में उन्होंने सफलता पूर्वक इस्लाम से अपनी रक्षा की।

चित्र 11: 29 मई, 1453, लंबे धार्मिक झगड़ों की शृंखला में, 53 दिन के घेरे के बाद तुर्क सुल्तान महमूद ने आखिर कुस्तुनतुनिया पर कब्जा कर लिया। इसके बाद यूरोप को एशिया से जोड़ने वाले स्थल मार्ग पर मुसलमानों का कब्जा हो गया। और यूरोप के लोगों को नए समुद्री मार्ग खोजने पड़े।

चित्र 12. पुर्तगाली नाविक वास्को डी गामा

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

इस टकराव का प्रभाव अरबों पर भी पड़ा। वे येरुशलम पर कब्जा करने में सफल रहे। लेकिन यूरोप में उनका प्रसार रुक गया, इतना ही नहीं यूरोप में अनेक इस्लामी राज्यों का अंत हो गया। इस संघर्ष का परिणाम यह रहा कि एशिया व यूरोप के बीच होने वाले व्यापार में अरबों की मध्यस्थता का अंत हो गया। जिससे मध्य एशिया को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ा। ईसाइयों ने सुदूर एशियाई देशों के साथ मिलकर उनकी घेराबंदी आरंभ कर दी तथा उन्हें मध्य एशिया तक ही सीमित रखने का प्रयास किया। इस टकराव से इस्लाम के रक्त रंजित प्रसार पर रोक लगी। सांस्कृतिक एवं आर्थिक कारणों से ईसाइयत व इस्लाम का यह टकराव मध्य एशिया में आज भी देखा जा सकता है।

आओ जानें :

1. ईसाई मत की स्थापना किसने की थी?
2. इस्लाम की स्थापना किसने की थी?
3. क्रूसेड किसे कहते हैं?
4. मार्टिन लूथर ने किस मत की नींव रखी?
5. खलीफ़ा कौन होते थे?
6. कोलंबस ने क्या खोज की?

आइए विचार करें :

1. ईसाई लोगों ने क्रूसेड क्यों किए?
2. मार्टिन लूथर ने नए मत की नींव क्यों रखी?
3. खलीफा कौन होते थे? उनका काम क्या होता था?
4. चर्च क्या होता है? संक्षेप में बताएं।
5. क्रूसेड क्या थे?

आओ करके देखें :

1. यरुशलम की वर्तमान स्थिति पर एक निबंध लिखें।
2. इस्लाम व ईसाइयत के संघर्ष के परिणामों को सूचीबद्ध करें।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

अध्याय - 6

भारत पर विदेशी आक्रमण

प्राचीन काल से ही भारत भूमि पर अनेकों विदेशी आक्रमण होते रहे हैं। विदेशी आक्रमणकारी यूनानी, शक, हूण, कुषाण, पार्थियन, आदि के रूप में भारत आए। लेकिन प्राचीन काल के आक्रमणकारियों और पूर्व मध्यकालीन आक्रमणकारियों में यह भेद था कि प्राचीन काल के आक्रमणकारी भारतीय समाज में समाहित कर लिए गए। परन्तु सातवीं सदी से अठारहवीं सदी के बीच हुए आक्रमणों की प्रकृति भिन्न थी तथा ये आक्रमण भारत पर हुए पहले के आक्रमणों से अधिक विनाशकारी सिद्ध हुए। पूर्व मध्यकाल व मध्यकाल में भी इन आक्रमणों का दौर लगातार जारी रहा। प्रस्तुत अध्याय में हम कुछ निम्नांकित विदेशी आक्रमणों पर विचार करेंगे।

➢ मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण	आठवीं शताब्दी
➢ महमूद गज़नवी के आक्रमण	ग्यारहवीं शताब्दी
➢ मुहम्मद गौरी के आक्रमण	बारहवीं शताब्दी
➢ मंगोलों के आक्रमण	तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी
➢ तैमूर के आक्रमण	चौदहवीं शताब्दी
➢ बाबर के आक्रमण	सोलहवीं शताब्दी
➢ नादिरशाह के आक्रमण	अठारहवीं शताब्दी
➢ अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण	अठारहवीं शताब्दी

जब किसी दूसरे देश का व्यक्ति हमारे देश में आता हैं तो वह हमारे लिए विदेशी होता है। ठीक उसी तरह जब हम किसी दूसरे देश में जाते हैं तो वंहा के लिए हम विदेशी होते हैं। विदेशी आक्रमण का अर्थ है, जब कोई अन्य देश हमारे देश पर आक्रमण कर दे। इस तरह के आक्रमणों के पीछे कई उद्देश्य निहित हो सकते हैं जैसे कि साम्राज्य विस्तार की अति महत्वाकांक्षा, आर्थिक कारण एवं व्यक्तिगत शत्रुता आदि।

हम भारत के नागरिक हैं, इसलिए हमारे लिए ये आवश्यक हो जाता है कि हमें उन सभी ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी कालक्रम के अनुसार हो जिसकी वजह से हमारा देश जो आर्थिक रूप से अति सम्पन्न हुआ करता था। आज विकासशील देशों की श्रेणी में आता है। अगर ये घटनाएं ना हुई होती तो शायद भारत की दशा और दिशा कुछ और होती। अंग्रेज़ी शासन के अलावा भी ऐसे बहुत से कारण रहे जिसकी वजह से आज भी

हमारा भारत वह भारत नहीं है जो इसे होना चाहिए था। इस अध्याय में कुछ ऐसे ही कारणों की व्याख्या की जाएगी। इस अध्याय में हम जानने का प्रयास करेंगे की किस तरह से विदेशी आक्रमणों ने हमारे महान देश भारत को आर्थिक रूप से कमजोर किया और इसी कमजोरी के चलते अन्ततः हम अंग्रेजो के अधीन हो गये।

भारत प्राचीन काल से सभ्य, विकसित और उन्नत देश रहा है। भारत की गिनती दुनिया में सबसे अमीर व संपन्न देशों में होती थी। जिस कारण उसे 'सोने की चिड़िया' भी कहते थे। भारत अपनी समृद्धि व सोने की प्रचुरता के कारण विश्व में प्रसिद्ध था। जिस कारण विदेशी आक्रमणकारी भारत को लूटने के लिए भारत पर आक्रमण करते थे। भारत के कई वीर एवं साहसी शासकों ने इन विदेशी आक्रमणकारियों का सामना किया पर 7वीं शताब्दी में गुप्त वंश के पतन के बाद भारत में आई राजनैतिक अस्थिरता का लाभ इन आक्रमणकारियों ने उठाया।

भारत पर विदेशी आक्रमण

प्राचीन काल से ही भारत विदेशियों के आकर्षण का केंद्र रहा है तथा भारत का उत्तर पश्चिमी भाग इसका मुख्य प्रवेश द्वार माना जाता था। विदेशी यहाँ यात्रियों, व्यापारियों व आक्रांताओं के रूप में आते रहे हैं। मध्यकाल भी इसका अपवाद नहीं था। पश्चिम से भारत में प्रवेश करने के तीन मुख्य मार्ग थे। प्रथम था समुद्र मार्ग से पश्चिमी तट पर पहुँचना। दूसरा था उत्तर पश्चिम में खैबर, गोमल एवं बोलन के दर्रो का और तीसरा था मकरान मरु प्रदेश का समतली भाग। इन मार्गों से ही विदेशी भारत में दाखिल होते थे।

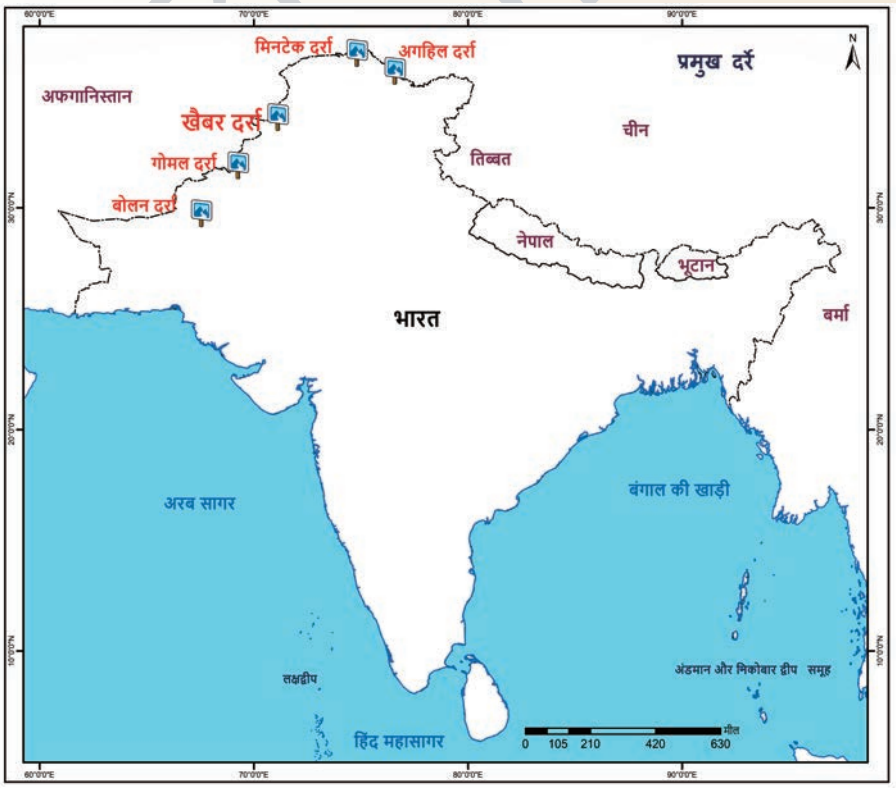

अविभाजित भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित प्रमुख दर्रे।

दर्राः पहाड़ो एवं पर्वतीय क्षेत्रों में पाए जाने वाले आवागमन के प्राकृतिक मार्गों को दर्रा कहा जाता है।

©BSE Bhiwani Not to be printed

अरबों ने मध्य एशिया में एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की थी। यह साम्राज्य राजनीति व धर्म का विचित्र संयोग था जिसकी स्थापना हजरत मोहम्मद ने की थी। 632 ई. में हजरत मोहम्मद की मृत्यु के समय इस राज्य का क्षेत्र बड़ा सीमित था लेकिन उसके उत्तराधिकारियों ने केवल आठ वर्षों में ही सीरिया तथा मिस्र पर अधिकार कर लिया। कालांतर में इस साम्राज्य ने विश्व के दो बड़े महानतम साम्राज्य के क्षेत्रों पर भी अधिकार कर लिया। ये साम्राज्य थे यूरोप का रोमन साम्राज्य व मध्य एशिया का फारस साम्राज्य। इस विशाल अरब साम्राज्य की सीमाएँ पूर्व मध्यकाल में भारत से लगने लगी थी।

अरबों ने खैबर व बोलन दर्रे से भारत में घुसने का प्रयास किया लेकिन काबुल-जाबुल प्रदेशों में भारतीयों की सतर्कता व किक्कान के लोगों की शूरवीरता के कारण अनेक वर्षों तक उन्हें सफलता नहीं मिली।

अरबों के प्रारम्भिक आक्रमण (636 ई. से 712 ई.)

अरबों ने भारत पर पहला आक्रमण 636 ई. में आधुनिक मुम्बई के निकट थाना नामक बंदरगाह पर जल मार्ग से किया लेकिन वे असफल रहे। इसके बाद भड़ौच व देबल पर अरबों ने आक्रमण किया लेकिन यहां भी उन्हें हार मिली। इसके बाद खलीफा उमर (634-644 ई.) ने जल मार्ग की बजाए स्थल मार्ग से सिंध पर आक्रमण की योजना बनाई लेकिन योजना कार्यान्वित न हो सकी। इसके बाद खलीफ़ा उस्मान (644-656 ई.) ने सिंध को जीतने के लिए योजना बनाई लेकिन यह भी सिरे नहीं चढ़ी। 660 ई. में अरबों ने खलीफ़ा अबू के समय सिंध पर स्थल मार्ग से पहली बार हमला किया। इस हमले में अरब सेना को भारी नुकसान उठाना पड़ा। 661 से 680 ई. के बीच खलीफ़ा मुआविया के समय सिंध पर छः बार आक्रमण किए गए लेकिन सभी असफल रहे। 695 ई. में अल हज्जाज ईराक का गवर्नर बना। वह सिंध को जीतना चाहता था। उसने 708 ई. में सिंध को जीतने की योजना बनाई।

मोहम्मद बिन कासिम का आक्रमण (712 ई.)

गवर्नर अल हज्जाज़ को खलीफ़ा वालिद से बार-बार फ़रियाद करने पर अनमने ढंग से सिंध पर आक्रमण करने के लिए आज्ञा भी मिल गई। युद्ध का तात्कालिक कारण बना सिंध के पास अरब व्यापारियों के साथ हुई लूटपाट की घटना। लंका से कुछ व्यापारिक जहाज अरब लौट रहे थे लेकिन समुद्री डाकुओं ने उन्हें देबल के पास लूट लिया।

लूटपाट करने वाले समुंद्री डाकू थे परन्तु इराक के गवर्नर हज्जाज़ ने सिंध के राजा दाहिर से क्षति पूर्ति की मांग की। दाहिर ने क्षति पूर्ति देने से मना कर दिया। परन्तु हज्जाज़ ने ताकत के नशे में राजा दाहिर को कमजोर जान कर आक्रमण किये लेकिन उसे हार का सामना करना पड़ा।

©BSEH Bhiwani Not to be Reprinted

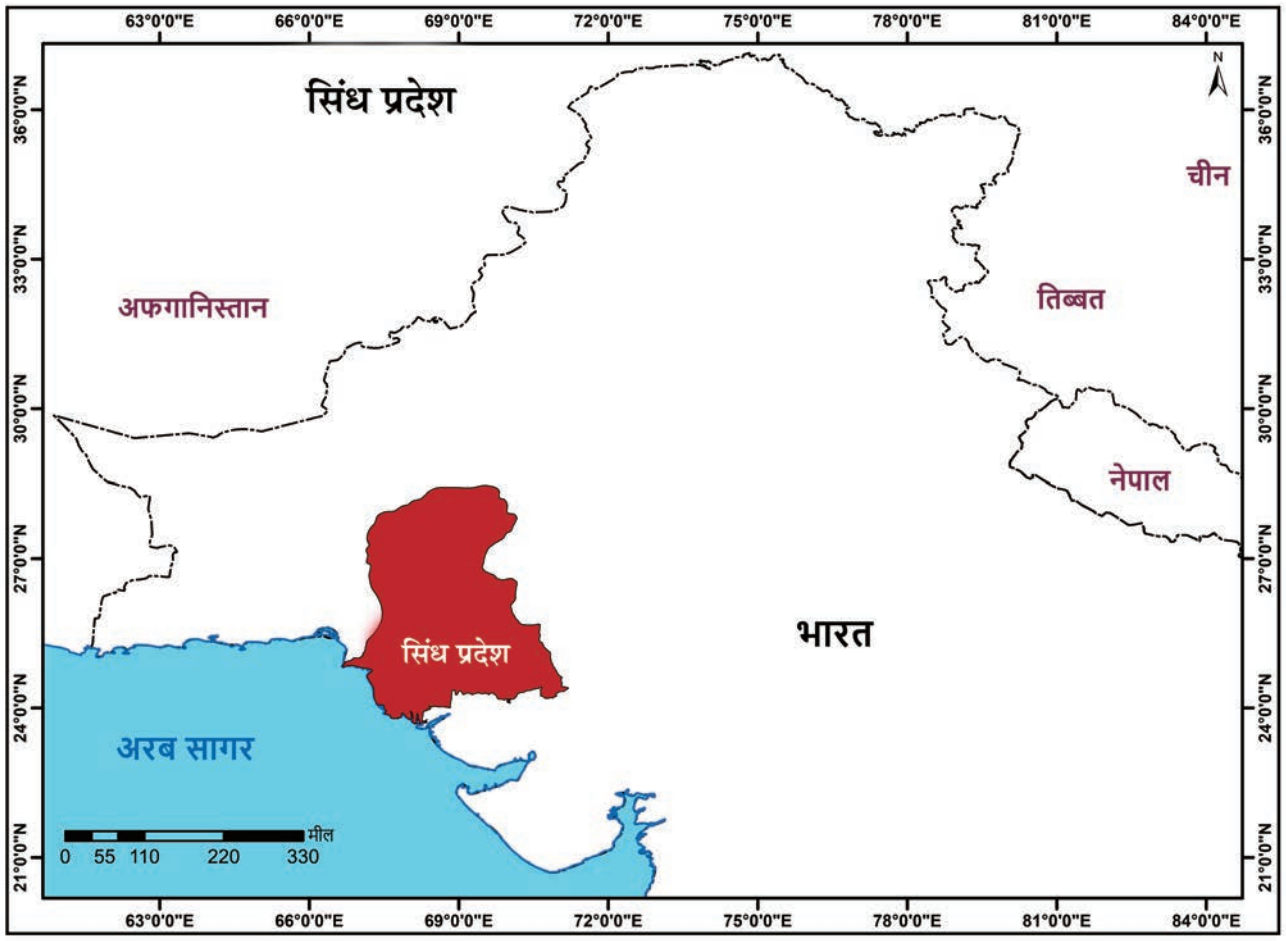

चित्र-3 भारत का सिंध प्रदेश

हज्जाज़ ने सबसे पहले सेनानायक उबैदुल्लाह को और फिर बुर्दल को दाहिर के राज्य पर आक्रमण करने के लिए भेजा। राजा दाहिर ने सेनापति उबैदुल्लाह व बुड़ैल को हरा कर मौत के घाट उतार दिया। तब हज्जाज़ ने अपने भतीजे व दामाद मोहम्मद-बिन-कासिम को 712 ई. में सिंध पर आक्रमण करने के लिए भेजा। मोहम्मद ने देबल पर आक्रमण कर दिया और उसे जीत लिया। यहाँ रहने वाले सभी वयस्क लोगों की हत्या कर दी गई। वहाँ के मंदिरों को तोड़ दिया गया। इसके बाद उसने आगे बढ़ते हुए सिंध नदी को पार किया। सिंध के अरोड़ में दोनों सेनाओं के बीच 20 जून 712 ई. को भयंकर युद्ध हुआ। दाहिर वीरता पूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसकी पत्नी ने किले के भीतर से पंद्रह हजार सैनिकों के साथ अरबों पर हमला बोल दिया लेकिन सीमित साधनों के कारण वह अधिक प्रतिरोध न कर सकी। अपनी पवित्रता की रक्षा करने के लिए उसने 'जौहर' किया। दाहिर के पुत्र जैसिया ने संघर्ष जारी रखा। मोहम्मद बिन कासिम ने राजा दाहिर की दोनों पुत्रियों सूर्या देवी व परमल देवी को बंदी बना लिया। उनको कासिम ने उपहार स्वरूप खलीफा के पास भेज दिया। वहाँ पहुँचने पर दोनों ने कूटनीति का प्रयोग कर कासिम को मृत्युदंड दिलवा दिया।

दाहिर का पुत्र अरबों का लगातार प्रतिरोध करता रहा। उसके बाद कश्मीर के शासक ललितादित्य ने उनके प्रसार को रोके रखा। 725 ई. में उन्होंने भारत पर पुनः आक्रमण किया लेकिन गुर्जर प्रतिहार शासकों ने उन्हें परास्त कर दिया। उस समय भारत में इस्लाम का प्रवेश अवश्य हो गया था। लेकिन सिंध पर अरबों के अधिकार के बाद लगभग तीन शताब्दियों तक मुस्लिम शासक भारत में सिंध से आगे बढ़ने का साहस न कर सके।

क्या आप जानते हैं ?

अरबों को सिंध पर विजय प्राप्त करने में 636 ई.-712 ई. तक 75 वर्ष लगे थे।

महमूद गज़नवी के आक्रमण

ग्यारहवीं शताब्दी में एक बार पुनः भारत पर विदेशी आक्रमणों का खतरा उस समय बढ़ गया जब गज़नी में तुर्कों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। तुर्क मध्य एशिया की एक बर्बर जाति थी जिसने इस्लाम धर्म अपना लिया था। गज़नी में एक तुर्क सरदार अल्पतगीन ने 962 ई. में अपना राज्य स्थापित किया। इसी राज्य के शासक भारत के लिए खतरा बन गए थे। गज़नी राज्य के सीमावर्ती भारतीय क्षेत्र पर उस समय हिंदुशाही शासकों की सत्ता थी। उनकी राजधानी वैहिंद थी। राज्य की सीमाएँ चिनाब नदी से हिंदुकुश पर्वत तक फैली थी।

986 ई. में विशाल सेना सहित जयपाल ने गज़नी पर आक्रमण कर दिया। लमगान के निकट दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ लेकिन जब युद्ध चल रहा था तो अचानक तूफान आ गया। तूफान ने जयपाल की सेना को भारी क्षति पहुंचाई। विवश होकर जयपाल को तुर्कों से संधि करनी पड़ी। जयपाल इस संधि से बड़ा विचलित रहा। कुछ समय बाद जयपाल को सूचना मिली कि सुबुक्तगीन भारत पर आक्रमण करने वाला है। जयपाल ने विदेशी आक्रमण का सामना करने के लिए कालिंजर, कन्नौज व अजमेर के शासकों से सहायता मांगी। इन सभी शासकों ने तुर्कों के भारत पर आक्रमण को रोकने के लिए अपनी सेनाएँ भेज दी। लमगान नामक स्थान पर पुनः युद्ध हुआ लेकिन इस युद्ध में जयपाल के नेतृत्व करने वाली सेनाओं को सफलता नहीं मिली।

सुबुक्तगीन की मृत्यु के बाद 997 ई. में उसका पुत्र महमूद गज़नी शासक बना। महमूद एक कट्टर मुसलमान शासक था। उसने इस्लाम का प्रसार करने व भारत की धन संपदा को लूटने के लिए भारत पर 17 आक्रमण किए। वह भारत में इस्लाम का प्रसार करके मुस्लिम जगत में प्रसिद्धि प्राप्त करना चाहता था। इस उद्देश्य से उसने 1000 ई. से 1027 ई. के बीच भारत पर 17 आक्रमण किए।

1001 ई. में उसने हिंदुशाही शासक जयपाल पर आक्रमण किया। पेशावर के निकट हुए युद्ध में जयपाल वीरतापूर्वक लड़ा लेकिन पराजित हुआ। जयपाल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र आनंदपाल शासक बना। उसके

© BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

राज्य पर महमूद गज़नवी ने कई आक्रमण किए। हिंदुशाही राज्य के अलावा महमूद गज़नवी ने भेरा, मुल्तान, नगरकोट पर आक्रमण किए तथा मन्दिर व मूर्तियां तोड़कर एवं बहुत-सा धन लूटकर गज़नी लौटा। महमूद गज़नवी ने हिंदुओं के पवित्र स्थल थानेश्वर पर आक्रमण किया। यहाँ चक्रस्वामी का एक बड़ा प्रसिद्ध मंदिर था। महमूद गज़नवी ने न केवल मंदिर को तोड़ा अपितु चक्रस्वामी की मूर्ति को भी खण्ड-खण्ड कर दिया।

महमूद गज़नवी ने हिंदुओं के एक अन्य पवित्र स्थल मथुरा पर भी आक्रमण किया। यहाँ भी उसने भगवान केशव की मूर्ति को भी अपमानित किया। महमूद गज़नवी ने गुजरात स्थित सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण का निर्णय किया। यहाँ का विशाल मंदिर विश्व प्रसिद्ध था। इस मंदिर के प्रति हिन्दुओं की गहरी आस्था थी। इस मंदिर में भारी धनराशि, हीरे, जवाहरात थे। मंदिर की आय का स्रोत दस हजार गाँवों का राजस्व था। मंदिर में एक सोने की घंटी लगी थी जिसका वज़न कई मण था। भगवान सोमनाथ की मूर्ति पर बने छत्र पर भी हजारों बहुमूल्य रत्न जड़े थे।

महमूद गज़नवी ने इस मंदिर की पवित्रता भंग करने व धन को लूटने के लिए सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण किया। उसे हिन्दुओं के भारी प्रतिरोध के कारण सोमनाथ के मंदिर पर अधिकार करने में तीन दिन लगे। महमूद गज़नवी द्वारा प्रतिरोध कर रहे अनेकों हिन्दुओं की हत्या कर दी गई। तत्पश्चात् महमूद ने मन्दिर को लूटा तथा भगवान सोमनाथ की मूर्ति को गदा के प्रहार से तोड़ दिया। यहाँ से प्राप्त धन को महमूद ऊँटों पर लादकर गज़नी ले गया था। जब वह गज़नी लौट रहा था तो सिंध के जाटों ने उसका रास्ता रोक लिया। लेकिन वह किसी तरह भारत से धन गज़नी ले जाने में सफल रहा। गज़नी पहुँच कर उसने जाटों को सबक सिखाने के लिए उन पर एक बार पुनः आक्रमण किया। यह गज़नवी का भारत पर अंतिम आक्रमण था। इस आक्रमण के दौरान उसने स्त्री व बच्चों को भी मार डाला। 1030 ई. में उसकी मृत्यु हो गई

क्या आप जानते हैं?

हिन्दुशाही वंश के जयपाल, आनंदपाल, त्रिलोचनपाल एवं भीमपाल ने 1001 ई. से 1026 ई. तक महमूद के आक्रमणों का लगातार प्रतिरोध किया तथा 1008 ई. में आनंदपाल से युद्ध में तो वो हारते-हारते बचा।

चित्र-5: आधुनिक सोमनाथ मंदिर गुजरात।

नगरकोट, कुरुक्षेत्र एवं मथुरा के मंदिर पिछली कई शताब्दियों से भारतीय ज्ञान, कला व संस्कृति के केन्द्रों के रूप में उभरे थे, उन्हें नष्ट करके महमूद गज़नवी ने भारत की धन सम्पदा के साथ-साथ भारतीय संस्कृति को भी भारी हानि पहुँचाई। महमूद भारतीय संस्कृति, ज्ञान एवं आस्था के प्रमुख केन्द्रों (मंदिरों) को नष्ट करके हिन्दुओं के आत्मविश्वास को गहरी चोट पहुंचाना चाहता था। उसके कृत्यों से हिंदुओं के मन में मुस्लिमों के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हुआ।

©BSEH, Bhiwani Not to be printed

मुहम्मद गौरी के आक्रमण

चित्र-6: वीर योद्धा पृथ्वीराज चौहान

एशिया में अब गज़नी राज्य का स्थान गौर के राज्य ने ले लिया था। गौर के शासक मुहम्मद गौरी ने भी भारत पर आक्रमण की योजना बनाई। उसने 1175 ई. से 1206 ई. तक भारत पर आक्रमण किए। गौरी के भारत पर आक्रमणों के समय उत्तर भारत में तीन शक्तिशाली राजवंश गुजरात के चालुक्य (मूलराज द्वितीय एवं भीम द्वितीय), दिल्ली-अजमेर के चौहान (पृथ्वीराज तृतीय) तथा कन्नौज के गहड़वाल (जयचंद राठौर) थे। तीनों ही अपने आप में इतने सक्षम थे कि वे अकेले-अकेले ही मुहम्मद गौरी से लोहा ले सकते थे। मुहम्मद गौरी ने 1175 ई. में मुल्तान पर आक्रमण किया तथा उसे जीत लिया। इसके बाद उसने उच्च के दुर्ग पर कूटनीतिपूर्वक विश्वासघात से अधिकार कर लिया। मुहम्मद गौरी गुजरात की समृद्धि से बड़ा प्रभावित था। वह उस पर अधिकार करना चाहता था। मुहम्मद गौरी कोई अविजित आक्रमणकारी नहीं था। भारत सदैव से ही वीरो की भूमि रही है। यंहा पर होने वाले आक्रमणों का वीरो ने मुहतोड़ जवाब दिया था। मुहम्मद गौरी को भी भारत में कई बार हार का सामना करना पड़ा। मुहम्मद गौरी की भारत में पहली पराजय 1178-79 ई. में गुजरात में हुई। उस समय गुजरात पर चालुक्य वंश के शासक मूलराज द्वितीय का शासन था। मुहम्मद गौरी ने दक्षिण राजपूताना होते हुए अन्हिलवाड़ा (पाटन) पर आक्रमण किया था। मूलराज द्वितीय एवं भीम द्वितीय की साहसी माँ नायिका देवी के नेतृत्व में अन्हिलवाड़ा की सेना ने आबू पर्वत के निकट कायाद्रां नामक स्थान पर मुहम्मद गौरी का सामना किया। मोहम्मद गौरी की सेना पूर्ण रूप से पराजित हुई मुहम्मद गौरी किसी प्रकार से गुजरात से अपनी पराजित सेना सहित भाग निकला। यह मुहम्मद गौरी की भारत में पहली पराजय थी। भारतीय राजाओं में मूलराज द्वितीय प्रथम शासक था जिसने सर्वप्रथम मुहम्मद गौरी को पराजित करके वापिस लौटाने पर मजबूर कर दिया।

इसके बाद मुहम्मद गौरी ने भारत पर आक्रमण का अपना रास्ता बदला। उसने अब पंजाब की ओर से भारत पर आक्रमण की योजना बनाई। पंजाब क्षेत्र पर इस समय गजनी वंश के शासक खुसरो मलिक का शासन था। उसने खुसरो मलिक को 1186 ई. में हरा दिया। पंजाब पर मुहम्मद गौरी का अधिकार हो गया था। अब वह आगे बढ़कर दिल्ली पर कब्जा करना चाहता था।

दिल्ली पर इस समय चौहान वंश के प्रतापी शासक पृथ्वीराज तृतीय की सत्ता थी। वह बड़ा वीर शासक था। जब 1190 ई. में गौरी ने सरहिंद को जीत लिया तो पृथ्वीराज इस विदेशी आक्रमणकारी का रास्ता रोकने के

गतिविधि : नायिका देवी पर अधिक से अधिक जानकारी एकत्रित करें।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

लिए तराईन के मैदान में आ डटा। 1191 ई. में तराईन के मैदान में पृथ्वीराज चौहान ने वीरता का परिचय देते हुए मोहम्मद गौरी को बुरी तरह हरा दिया। वह बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचाकर भागने में सफल रहा। लेकिन अगले वर्ष मुहम्मद गौरी ने भारत पर पुनः आक्रमण किया। दोनों सेनाओं के बीच पुनः एक बार तराईन का दूसरा युद्ध 1192 ई. में हुआ। इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान ने वीरता का परिचय दिया लेकिन वह हार गया। दिल्ली पर मोहम्मद गौरी का अधिकार हो गया।

चित्र-7: विश्व प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय

यहाँ से आगे बढ़ते हुए मोहम्मद गौरी की सेनाओं ने 1193 ई. में भारत के अन्य क्षेत्रों पर आक्रमण किया तथा मेरठ व अलीगढ़ (कोल) पर अधिकार कर लिया। 1194 ई. में मोहम्मद गौरी ने चंदावर के युद्ध में कन्नौज के शासक को भी हरा दिया। अब कन्नौज तक के क्षेत्र पर गौरी की सत्ता स्थापित हो गई थी। गौरी के एक सेनानायक बख्तियार खलज़ी ने 1198 ई. में बंगाल की राजधानी नादिया पर आक्रमण किया जहाँ सेन वंश के शासक लक्ष्मण सिंह शासन करते थे।

इस आक्रमण के समय बख्तियार खिलजी ने विश्व प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय को भी तहस-नहस कर दिया। यहाँ के भवनों सहित पुस्तकालय को भी आग लगा दी। खलजी ने यहाँ की जनता पर बड़े अत्याचार किए। 1206 ई. में मोहम्मद गौरी की मृत्यु के बाद उसके एक दास कुतुबुद्दीन ऐबक ने भारत में अपने स्वतंत्र राज्य की नींव रखी। यह राज्य बाद में दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना गया। लेकिन 1206 ई. से 1526 ई. के बीच दिल्ली सल्तनत का हिन्दुओं ने प्रतिरोध जारी रखा। राजपूतों, मेवों, मंडारों ने सुल्तानों की नाक में दम करके रखा।

मंगोलों के आक्रमण

भारत पर विदेशी आक्रमणों का यह सिलसिला तेरहवीं व चौदहवीं शताब्दियों में भी चलता रहा। इन वर्षों में आक्रमणकारी थे मंगोल। मंगोल मध्य एशिया की एक खानाबदोश जाति थी। इस जाति ने चंगेजखान के नेतृत्व में मध्य एशिया के बड़े भाग पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। तेरहवीं व चौदहवीं शताब्दी में ये मंगोल भारत के लिए खतरा बने रहे। 1241 ई. में मंगोलों ने लाहौर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। 1245 ई. में मंगोलों ने मुल्तान को भी जीत लिया।

मंगोलों के आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य लूटमार होता था। मंगोलों के आक्रमणों के कारण भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में अव्यवस्था फैल गई थी। 1297 ई. में मंगोलों ने कादिर खान के नेतृत्व में आक्रमण किया। इस आक्रमण के दौरान उन्होंने सतलुज और व्यास नदियों तक के क्षेत्र में लूटमार की। इससे उन्हें बहुत धन प्राप्त हुआ। अतः उन्होंने इसके बाद लगातार कई बार भारत पर आक्रमण किए। 1299 ई. में मंगोलों ने भारत पर एक बड़ा हमला किया। इस बार उन्होंने दिल्ली तक के प्रदेशों को लूटा। इसके चार वर्ष बाद 1303 ई. में तारगी के

© BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

नेतृत्व में मंगोलों ने भारत पर पुनः आक्रमण किया तथा पंजाब व दिल्ली के क्षेत्रों में लूटपाट मचाई। इसके बाद मंगोलों ने लूटपाट के उद्देश्य से 1305 ई. व 1306 ई. में भी भारत पर आक्रमण किए। भारत पर मंगोलों का अंतिम आक्रमण 1327 ई. में तारमशिरीन खान के नेतृत्व में किया गया।

मंगोलों के आक्रमण से भारत को बहुत अधिक हानि हुई। लगातार हो रहे आक्रमणों के कारण उत्तर पश्चिम का उपजाऊ क्षेत्र उजड़ गया। पंजाब की अर्थव्यवस्था बिगड़ गई। हमलों के कारण शासन व्यवस्था अस्थिर हो गई। सामाजिक ताना-बाना टूटने लगा। उत्तर-पश्चिम का समृद्ध नगर लाहौर तो बर्बाद ही हो गया था।

तैमूर का आक्रमण

1398 ई. में भारत पर समरकंद के शासक तैमूर ने आक्रमण किया। उस समय दिल्ली का सुल्तान नसीरुद्दीन मुहम्मद था। उसने तैमूर के आक्रमण को रोकने के लिए कुछ नहीं किया। वह स्वयं ही आक्रमण की सूचना मिलते ही दिल्ली छोड़कर भाग गया। तैमूर ने दिल्ली को खूब लूटा। हजारों स्त्रियों, पुरुषों व बच्चों को मौत के घाट उतार दिया वह दिल्ली से भारी मात्रा में सोना, चाँदी, हीरे-जवाहरात लूटकर ले गया। बहुत से युद्धबंदी स्त्री, पुरुष व बच्चों को दास बनाकर मुस्लिमों को बेच दिया गया।

तैमूर के नरसंहार की बातें दिल्ली व उसके आसपास के क्षेत्रों में कई सदियों तक होती रही। दिल्ली व उसके आसपास के क्षेत्र को तैमूर ने बर्बाद कर दिया था। पंजाब पर उसके प्रतिनिधि ने कई वर्षों तक शासन किया तैमूर के आक्रमणों ने सुल्तानों की सैन्य व्यवस्था की दुर्बलता को प्रकट करके सल्तनत के पतन में मुख्य भूमिका निभाई।

बाबर के आक्रमण

सोलहवीं शताब्दी में भारत पर आक्रमण करने वाला प्रमुख व्यक्ति ज़हिरूद्दीन मोहम्मद बाबर था। वह तैमूर का वंशज था। उसका पिता मध्य एशिया में स्थित फरगना का शासक था। पिता की मृत्यु के बाद वह अल्पायु में 1494 ई. में शासक बना लेकिन मध्य एशिया में उजबेगों की शक्ति के आगे उसकी एक न चली और अंत में वह 1504 ई. में काबुल का शासक बन बैठा। काबुल से वह भारत पर हमले की योजना बनाने लगा।

1519 ई. में उसने भारत के सीमावर्ती किले बाजौर पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। इसके बाद उसने अपने दूसरे आक्रमण के दौरान पेशावर को जीत लिया। इसके बाद 1520 ई. में बाबर ने पंजाब के स्यालकोट पर आक्रमण किया लेकिन वह इससे आगे नहीं बढ़ सका क्योंकि सैय्यदपुर के लोगों ने उसका डटकर मुकाबला किया। इसके बाद बाबर ने अपना चौथा हमला पंजाब पर किया। उसने पंजाब को जीत लिया।

बाबर का सबसे महत्त्वपूर्ण हमला दिल्ली की सल्तनत पर था। यहाँ का सुल्तान उस समय इब्राहिम लोदी था। वह एक अप्रिय शासक था। बाबर ने उसे 1526 ई. में पानीपत की प्रथम लड़ाई में हराकर मार दिया तथा

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

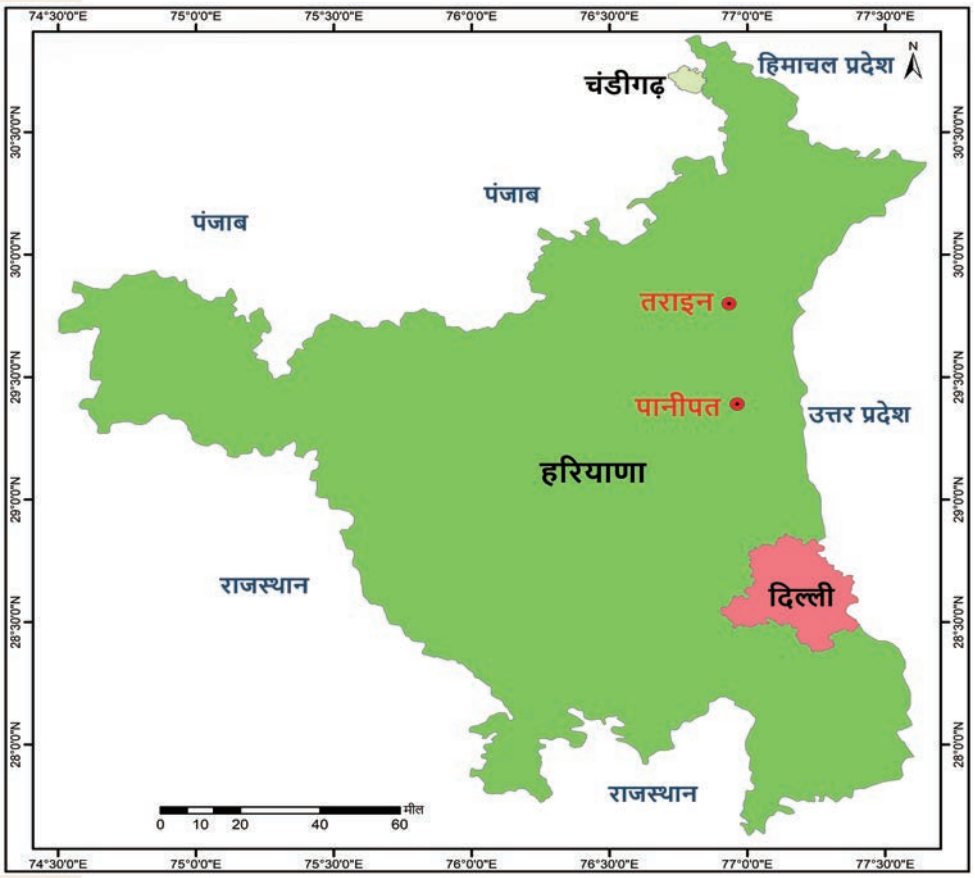

चित्र-8: आधुनिक हरियाणा का मानचित्र

दिल्ली की सल्तनत को समाप्त कर दिया। उसने मुगल राजवंश की नींव स्थापित कर दी। उसने आगे बढ़ते हुए राजपुताना पर कब्जा करने के लिए 1527 ई. में राणा सांगा पर आक्रमण कर दिया। उसका सामना करने के लिए मेवाड़ के राणा सांगा ने मोर्चा संभाला। बाबर के सैनिकों में घबराहट व बेचैनी फैली हुई थी क्योंकि उन्होंने राजपूतों के शौर्य एवं साहस की अनेक कथाएं सुन रखी थीं। साहसी, शूरवीर, युद्ध एवं रक्तपात के शौकीन तथा राष्ट्रीयता की सशक्त भावना से ओतप्रोत राजपूतों को सामने पाकर मुगल सेना का आत्मविश्वास डगमगा रहा था। ऐसे में बाबर ने जेहाद का सहारा लिया तथा मदिरा के प्याले तोड़कर अपनी सेना का मनोबल ऊँचा करने का प्रयास किया। खान्वाहा नामक स्थान पर राजपूतों ने वीरता से मुगलों का सामना किया। दोनों पक्षों में भयंकर युद्ध हुआ लेकिन बाबर की जीत हुई।

बाबर को मुँह तोड़ जवाब देने के लिए अब राजपूत मेदिनीराय के आसपास एकत्र होने लगे। 1528 ई. में बाबर ने मेदिनीराय पर हमला कर दिया। दोनों सेनाओं के बीच चंदेरी में जनवरी 1528 ई. में भयंकर युद्ध हुआ। लेकिन राजपूतों ने अपने प्राणों की बलि देने से पूर्व मुगल सेना से भयंकर प्रतिशोध लिया। अगले वर्ष 1529 ई. में बाबर ने घाघरा के युद्ध में अफगानों को हराकर बिहार पर भी अपनी सत्ता स्थापित कर ली।

नादिरशाह का आक्रमण

17वीं शताब्दी के अंतिम चरण में औरंगजेब द्वारा अपनाई गई नीतियों के कारण मुगल साम्राज्य कमज़ोर हो गया। उत्तराधिकार के युद्धों ने इस स्थिति को और भी सोचनीय बना दिया। इसका लाभ उठाकर 1739 ई. में ईरान के शासक नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण कर दिया। इस समय दिल्ली में मुगल बादशाह मुहम्मद शाह का शासन था। वह अपना अधिकतर समय भोग-विलास और आमोद-प्रमोद में व्यतीत करता था। लोग उसे मुहम्मद शाह रंगीला कहते थे। वह नादिरशाह के आक्रमण से दिल्ली की रक्षा करने में असमर्थ रहा। उसकी सेना को नादिरशाह ने 24 फरवरी 1739 ई. में करनाल के युद्ध में हरा दिया। नादिरशाह लगभग दो मास दिल्ली में रहा और जब वह ईरान लौटा तो तीस करोड़ रुपये नकद, सोना, चाँदी, हीरे जवाहरात के अतिरिक्त दस हाथी, सात सौ घोड़े, दस हजार ऊँट, एक सौ तीस लेखपाल, दो सौ लोहार, तीन सौ राजमिस्त्री, सौ संगतराश (संगतराश : पत्थर गढ़ने वाला) और दो सौ बढ़ई अपने साथ ले गया। जाने से पहले वह मुगल बादशाह मुहम्मद शाह को पुनः भारत का सम्राट घोषित कर गया।

उसके आक्रमण ने भारत में मुगल राज्य की कमज़ोरी, अयोग्यता व निकम्मेपन की पोल खोल दी। नादिरशाह ने दिल्ली में कत्लेआम मचा दिया। उसके सैनिकों ने स्त्री, बच्चों और बूढ़ों तक को नहीं छोड़ा। तीन दिन तक दिल्ली में लूटपाट व कत्लेआम चलता रहा। तीन दिन में ही दिल्ली के साधारण जन से ही तीन करोड़ रुपए लूट लिए गए। नादिरशाह भारत से प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा व मयूर सिंहासन लेकर ईरान वापस लौट गया। मयूर सिंहासन स्वर्ण व नवरत्न जड़ित मुगल बादशाहों का सिंहासन था जिसकी कीमत उस समय भी करोड़ो में थी। मुगल बादशाह मुहम्मदशाह ने दिल्ली लुट जाने के डर से उसे पंजाब का पूरा प्रांत दे दिया।

अहमदशाह अब्दाली के आक्रमण

1756 ई. में अब्दाली ने भारत पर आक्रमण कर दिया। उसने दिल्ली में लूट मचाई बल्कि पूर्व की ओर आगे बढ़ते हुए मथुरा तक लूटमार करता हुआ चला गया। अब्दाली की इन गतिविधियों को रोकने के लिए भारत में मराठों की शक्ति उभर रही थी। मराठों ने अब्दाली के विश्वस्त लोगों को पंजाब से हटा दिया तथा अपने एक विश्वसनीय व्यक्ति अदीना बेग को पंजाब का गवर्नर बना दिया। अब्दाली को इससे बड़ा क्रोध आया। उसने पुनः भारत पर हमला कर दिया। मराठों ने उसका सामना किया।

दोनों सेनाओं के बीच 14 जनवरी 1761 ई. में पानीपत की तीसरी लड़ाई हुई। इस युद्ध में मराठों की हार हुई। अब्दाली को मुगल सरदारों ने बहुत-सा धन दिया। वह दिल्ली से वापिस जाते समय शाह आलम को मुगल बादशाह घोषित कर गया। इसके बाद 1767 ई. में उसने पुनः दिल्ली पर आक्रमण किया। अब्दाली के आक्रमण

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

से भारत को बड़ा आर्थिक व राजनीतिक नुकसान हुआ। अब्दाली ने पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों को हराकर उनकी दिल्ली पर सत्ता स्थापित करने की सम्भावना समाप्त कर दी। अब्दाली के आक्रमण से पंजाब एक बार पुनः बर्बाद हो गया। अब्दाली ने भारत से बड़ा धन प्राप्त किया।

अब्दाली से हारकर मराठों की भारत को जीतने की योजना को गहरा धक्का लगा। उनकी शक्ति का ह्रास होने के बाद भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के राज्य का विस्तार हो गया। जिसने भारत को अनेक वर्षों तक लूटा। सातवीं सदी से अट्ठारहवीं सदी के बीच भारत पर विदेशी आक्रांताओं ने एक के बाद एक लगातार आक्रमण किए जिनका भारतीय जनता ने वीरता, साहस एवं शौर्य से सामना किया। कई अवसरों पर भारतीय शासकों की आपसी फूट एवं आदर्शवादिता उनकी असफलता का कारण बनी लेकिन भारतीयों ने इन विदेशी आक्रांताओं के दमन के आगे कभी घुटने नहीं टेके तथा अपनी सभ्यता व संस्कृति के अटूट मूल्यों को बनाए रखा।

विदेशी आक्रमणों की प्रकृति :

सातवीं सदी से अठारहवीं सदी के बीच हुए इन सभी विदेशी आक्रमणों की प्रमुख विशेषताएं निम्न थी :

- ये सभी इस्लामी आक्रमण थे मंगोल आक्रमणों को छोड़कर।
- अधिकतर आक्रमणकारियों ने साम्प्रदायिक उत्साह अथवा जेहाद का सहारा लिया।
- लूटपाट और हत्याएं हुईं।
- इस्लाम का प्रसार इन आक्रमणों का मुख्य (जबरन धर्मांतरण) उद्देश्य था जिससे इन आक्रमणकारियों का भारतीय संस्कृति में आत्मसातीकरण नहीं हो पाया।
- सभी आक्रमणकारियों को वीरता, साहस एवं शौर्य से ओतप्रोत भारतीय जनता के कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा।
- आक्रमणकारी अनैतिक युद्धनीति का प्रयोग कर ही विजय प्राप्त करने में सफल हुए।
- भारतीय हिन्दू शासकों ने युद्ध के समय भी अधिकतर उच्चतम नैतिक आदर्शों का पालन किया जो उनके लिए आत्मघाती साबित हुआ।
- अधिकतर आक्रमणकारियों ने भारतीय हिन्दू शासकों के मनोबल एवं आत्मविश्वास को चकनाचूर करने के लिए भारतीय ज्ञान परम्परा, संस्कृति के वाहक बड़े-बड़े प्रतिष्ठानों, सांस्कृतिक केन्द्रों एवं मंदिरों का विध्वंस किया।
- तुर्कों-अरबों की सेना में अच्छी नस्ल के अरबी-तुर्की घोड़े थे।
- भारतीय हिंदू शासकों की सेना में हाथियों की अधिकता से आक्रमण में तीव्रता कम होती थी।

©BSTI, Bhiwani Not to be Reprinted

भारतीय शासकों की भूलें :

- दाहिर ने मोहम्मद-बिन-कासिम की सेना पर तब आक्रमण नहीं किया जब वह अपनी सेना की थकान उतार रहा था तथा अपने बीमार घोड़ों का ईलाज कर रहा था।
- पृथ्वीराज तृतीय ने गौरी को तराईन के प्रथम युद्ध में हराने के बाद वापिस जाने दिया।
- आनंदपाल ने महमूद पर तब आक्रमण नहीं किया जब वह ईलाक खान के साथ जिंदगी और मौत की लड़ाई लड़ रहा था।
- इब्राहिम लोदी ने थकी हुई बाबर की मुगल सेना को सात दिन तक आराम करने तथा इस बीच खाइंया खोद लेने का समय दे दिया।
- उच्चतम गुप्तचर व्यवस्था (चाणक्य कालीन) का स्तर मध्यकाल के भारतीय शासक बनाए रखने में असफल रहे।
- महाकाव्यकालीन तीरंदाजी का स्तर मध्यकाल में गिरता चला गया जबकि तुर्कों की सेना में एक टुकड़ी प्रशिक्षित तीरदांजी की थी।

विदेशी आक्रमणों के भारत पर पड़े प्रभाव

भारत में विदेशी आक्रमणों के प्रभाव को दो भागों में बांटा जा सकता है –

(अ) तत्कालीन प्रभाव **(ब) दूरगामी प्रभाव**

अ) तत्कालीन प्रभाव : इन प्रभावों से हमारा अभिप्राय है कि मोहम्मद-बिन-कासिम, गज़नवी तथा गौरी के आक्रमणों के उस समय भारत पर क्या प्रभाव पड़े। उदाहरण के लिए इन हमलों में व्यापक जन-धन की हानि हुई, कला और साहित्य को आघात पहुंचा। संक्षेप में अरब व तुर्कों के आक्रमणों के निम्नलिखित तत्कालीन प्रभाव पड़े :

1. **इस्लाम का प्रसार :** अरबों व तुर्को में नया धार्मिक जोश था और उन्होंने इस्लाम को फैलाने के लिए ही भारत पर आक्रमण किया था। उतरी भारत पर अधिकार करने के बाद उन्होंने इस्लाम का बड़ी तेजी से प्रसार करना शुरू कर दिया था। आक्रमणकारियों के साथ अनेक उलेमा-मौलवी भारत आए। उन्होंने भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार किया। तलवार की नीति असफल होते देख लालच का सहारा लिया गया लेकिन फिर भी इस्लाम का अधिक प्रसार नहीं हो पाया।
2. **जन-धन की हानि :** गज़नवी ने भारत पर 1000 ई. से 1025 ई. में अनेक बार आक्रमण किए। महमूद

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

के इन आक्रमणों का उद्देश्य धन प्राप्त करना था। नगरकोट, कन्नौज, मथुरा और सोमनाथ से वह अपार सम्पदा ले जाने में सफल रहा। यद्यपि गौरी के आक्रमणों का सीधा लक्ष्य धन प्राप्त करना नहीं था लेकिन उसके अभियानों में, कत्लेआम जैसी घटनाएँ देखने में मिलती है। अनेक लोगों को उसने मौत के घाट उतार दिया। नालन्दा और विक्रमशिला के मठों को आग लगवा दी। दोनों आक्रमणों में भारत को जन-धन की हानि उठानी पड़ी।

3. **कमज़ोर युद्ध नीति :** तुर्क आक्रमण के समय भारतीयों की कमजोर युद्धनीति उजागर हुई। भारतीय शासक सेना में अधिकांश हाथियों का प्रयोग करते थे जबकि तुर्कों के पास अश्व सेना अधिक थी। अश्व हाथियों की तुलना में अधिक तेजी व फुर्ती के साथ मुड़ सकता था। इसके अतिरिक्त भारतीयों का सैन्य संगठन कमजोर था। तुर्कों के पास भारतीयों की तुलना में कम सेना थी लेकिन वह नियोजित ढंग से बंटी हुई थी। मुहम्मद गौरी ने तराईन के दूसरे युद्ध में कम सेना होने पर भी युद्ध नीति का ठीक ढंग से संचालन करके व अपनी सेना का नियोजित ढंग से बांट कर विजय प्राप्त की।

4. **कला एवं साहित्य को आघात :** गज़नवी के आक्रमणों में भारतीय मन्दिरों एवं मूर्तियों को तोड़ने की विशेषता उभरकर सामने आई। थानेश्वर, नगरकोट, मथुरा, कन्नौज, सोमनाथ में इमारतों, धर्मस्थलों और मन्दिरों को तोड़ा। ये भव्य कला की मूर्तियाँ और नमूने सदा के लिए नष्ट हो गए। महमूद ने केवल मन्दिरों और मूर्तियों को ही नहीं तोड़ा बल्कि वह अनेक उच्चकोटि के कलाकारों और शिल्पकारों को अपने साथ गज़नी ले गया और उन्हें मौत के घाट उतार दिया। उसके कृत्यों से भारतीय स्थापत्य कला पर बुरा असर पड़ा। गौरी के आक्रमणों में मन्दिरों पर हमले तो दिखाई नहीं देते परन्तु गौरी के सेनापतियों द्वारा इस प्रकार का नुकसान पहुँचाया गया। उदारहण के लिए बख्तियार खिलजी ने नालन्दा बौद्ध विहार को आग लगवा दी। इस विहार में अनेक अमूल्य पुस्तकें और पाण्डुलिपियाँ जल गई।

5. **भारत में तुर्क सता की स्थापना :** तुर्क आक्रमणों से भारत में तुर्क सता की स्थापना हुई। यह तुर्क आक्रमण का सबसे व्यापक तत्कालीन प्रभाव था। गौरी ने पंजाब पर अधिकार करके भारत के अन्दरूनी भागों पर भी कब्जा कर लिया। तराईन के दूसरे युद्ध के बाद तो उसने दिल्ली, कन्नौज, अजमेर, मथुरा और गुजरात पर अधिकार कर लिया। मुहम्मद गौरी के गुलामों ने भारत के अनेक क्षेत्रों को विजित किया। इस प्रकार 1206 ई. में गौरी की मृत्यु के समय भारत में तुर्क साम्राज्य की स्थापना हो चुकी थी।

ब. दूरगामी प्रभाव : महमूद गज़नवी और गौरी के सफलतापूर्वक अभियान में भारत में तुर्क शासन की शुरुआत की । इस नए राजनीतिक तत्व के प्रवेश से मूलभूत ढांचे में बदलाव न होने के बावजूद भी तुर्कों के आक्रमणों ने भारतीय समाज के जीवन के सभी क्षेत्रों में नए तत्वों को पैदा किया । इन नए तत्वों के दूरगामी प्रभाव समाज पर स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

1. **भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना :** पूर्व मध्य काल में हर्ष की मृत्यु के बाद केन्द्रीय सत्ता कमजोर हो गई थी। राजपूत शासक सामन्तों पर निर्भर होते थे। तुर्क शासन की स्थापना पर केन्द्र पुनः शक्तिशाली होकर उभरा। अब सुल्तान सत्ता का सर्वेसर्वा बन गया। सुल्तान प्रभुत्व सम्पन्न और स्वतन्त्र राजा था। दिल्ली के सुल्तान की शक्ति पहले के भारतीय राजाओं से भिन्न और अधिक थी। सुल्तानों के अधीन जिन राज्य अथवा सल्तनत की स्थपना हुई उसकी प्रकृति इस्लामी राज्य की थी जिसमें उलेमाओं का प्रभाव था।
2. **सामन्ती प्रथा का पतन :** तुर्कों के आक्रमण के बाद राजपूत कालीन सामन्ती व्यवस्था का पतन हो गया। तुर्क शासकों ने मुख्य राजपूत सरदारों को उनके पद से हटा दिया। सामन्तों को अब किसी क्षेत्र विशेष पर शासन करने का अधिकार नहीं था। सारा अधिकार सुल्तान के हाथ में केन्द्रित था। इससे इस काल में राजनीतिक और आर्थिक एकीकरण हुआ। यद्यपि सुल्तान राजपूत सरदारों का पूरी तरह उन्मूलन नहीं कर पाए। कर प्रणाली की शुरुआत इस्लामिक प्रथा के अनुसार हुई। हिन्दुओं से जज़िया नामक कर लिया जाने लगा।
3. **इस्लामी स्थापत्य का विकास :** तुर्क आक्रमण के प्रभाव से भारतीय स्थापत्य कला को नुकसान हुआ। इसके स्थान पर एक नई कला का उदय हुआ। इस कला की अपनी ही कुछ विशेषताएं थी। 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा' नामक मस्जिद का निर्माण इसी कला से हुआ। इस नई स्थापत्य कला में चूना मिश्रित नए मसालों का प्रयोग भवनों के निर्माण में हुआ। इस नई तकनीकी से इमारतों में दृढ़ता आई।
4. **शिक्षा और भाषा पर प्रभाव :** तुर्कों के आगमन से भारतीय शिक्षा केन्द्रों का ह्रास हुआ तथा शिक्षा के क्षेत्र में एक अलग प्रणाली की शुरुआत हुई जिसे मदरसा प्रणाली कहते हैं। यह शिक्षा प्रणाली भारतीय प्रणाली से भिन्न थी। यह शिक्षा मस्जिदों में दी जाती थी। इस्लाम में शिक्षक विद्यार्थी के घर जाकर भी शिक्षा प्रदान कर सकता था। तुर्कों के आगमन से भारत में फारसी भाषा का उदय हुआ। तुर्क शासकों ने अपने राजकार्यों में इस भाषा को प्राथमिकता दी। सैनिकों और विद्वानों ने इस भाषा को भारत के अनेक स्थानों पर पहुँचाया। इस प्रकार देखते ही देखते भारतीय समाज का स्वरूप बदलने लगा।

इस तरह से हम कह सकते है कि सातवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक भारत पर अनेकों विदेशियों ने आक्रमण किए। यद्यपि इन आक्रमणों की वजह से भारत की सामाजिक व धार्मिक पृष्ठभूमि, भारतीय दर्शन व संस्कृति, आर्थिक स्थिति एवं राजनीतिक दृष्टिकोण पर व्यापक प्रभाव पड़ा। लेकिन फिर भी इन लगातार आक्रमणों के बावजूद भारतीय संस्कृति, धर्म एवं सभ्यता ने अपने आपको अक्षुण बनाए रखा। भारतीय शासकों एवं जनता के निरंतर प्रतिरोध ने भारतीयों के उत्साह एवं आत्मविश्वास को बनाए रखने में मुख्य भूमिका निभाई। इस्लाम का सीमित प्रसार ही हो पाया। राजनीतिक रूप से चाहे इन आक्रमणकारियों को कुछ सफलता मिली हो लेकिन सांस्कृतिक रूप से भारत अजेय बना रहा।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

प्रस्तुत अध्याय में दी गई जानकारी के आधार पर निम्न प्रश्नों के जवाब दें।

1. अरबों ने भारत पर पहला आक्रमण कब किया?
2. 712 ई. में अविभाजित भारत के सिंध प्रदेश के हिन्दू राजा का क्या नाम था?
3. अरबों को सिंध को जीतने में कितने वर्ष लगे?
4. महमूद गज़नवी द्वारा भारत पर कुल कितनी बार आक्रमण किया गया?
5. विश्व प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर कौन से राज्य में स्थित है?
6. 1191 ई. में तराइन के मैदान में किस-किस के मध्य युद्ध हुआ?
7. मंगोलों का सबसे शक्तिशाली नेतृत्व किस ने किया था?
8. पानीपत की प्रथम लड़ाई कब हुई थी?
9. भारत से कोहिनूर हीरे को लूटने वाले आक्रमणकारी का क्या नाम था?
10. पानीपत की तीसरी लड़ाई कब हुई थी?

आओ जानें

1. पश्चिम से भारत में प्रवेश के मुख्य मार्ग कौन से थे? दर्रों से आप क्या समझते है?
2. महमूद गज़नवी के भारत पर आक्रमणों के पीछे क्या उद्देश्य थे?
3. तराइन के युद्ध कब और किसके मध्य हुए थे?
4. मुहम्मद गौरी की भारत में सर्वप्रथम हार कहां व कैसे हुई?

चर्चा करें

1. पानीपत की प्रथम लड़ाई का संक्षिप्त विवरण लिखें।
2. महमूद गज़नवी के द्वारा किये गए आक्रमणों के प्रतिरोधों का वर्णन करें।
3. नादिरशाह दवारा दिल्ली की जनता पर किये गए अत्याचारों का उल्लेख करें।
4. सोमनाथ मंदिर के विध्वंस पर एक लेख लिखें।
5. विदेशी आक्रमणों के भारत पर कौन-कौन से प्रभाव पड़े?

आइये विचार करें एवं प्रकाश डालें

1. अगर भारत पर विदेशी आक्रमण न हुए होते तो वर्तमान वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत की क्या स्थिति होती?
2. विदेशी आक्रमणों की सफलता और भारतीयों की उन्हें रोक पाने में विफलता के क्या कारण रहे होंगे?

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

अध्याय - 7

उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद

सोलहवीं सदी में पुनर्जागरण एवं धर्म सुधार आंदोलन के परिणामस्वरूप यूरोप का राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक जागरण हुआ। इस जागरण से विश्व में आधुनिक युग की शुरुआत हुई जिसका नेतृत्व यूरोप ने किया। इस जागरण के परिणामस्वरुप यूरोप और विशेष रूप से इंग्लैंड में खेती करने के तरीकों एवं उत्पादन के क्षेत्र में महान परिवर्तन हुए जिससे वहां बड़ी मात्रा में अतिरिक्त उत्पादन होने लगा। अपने तैयार माल को बेचने एवं अपने उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त करने के लिए यूरोप के देश एशिया एवं अफ्रीका के विशाल भू-भागों की तरफ आकर्षित हुए व इन भागों पर अपना आर्थिक एवं राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करने लगे। इसी आधिपत्य के प्रयासों को उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद का नाम दिया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में हम उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद के कारणों, उपनिवेशक उसके स्वरूप एवं उसके विस्तार व प्रभावों का अध्ययन करेंगे।

चित्र 1. उपनिवेशक अत्याचारों को दर्शाता एक चित्र

आओ सीखें : अध्ययन के मुख्य बिंदु

साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद का अर्थ

क) साम्राज्यवाद के प्रसार में सहायक परिस्थितियां :

1. यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति
2. अतिरिक्त पूंजी
3. यातायात और संचार के साधन
4. ईसाई धर्म प्रचारकों का योगदान
5. उग्र राष्ट्रवाद की भावना
6. सभ्य बनाने का अभियान
7. एशिया और अफ्रीका में अनुकूल परिस्थितियाँ

ख) साम्राज्यवाद का विकास

1. एशिया में साम्राज्यवाद
2. इंग्लैंड के उपनिवेश
3. पुर्तगाल के उपनिवेश
4. हॉलैंड के उपनिवेश
5. फ्रांस के उपनिवेश, जर्मनी और रूस के उपनिवेश
6. चीन में उपनिवेशवाद
7. अफ्रीका में साम्राज्यवाद

ग) साम्राज्यवाद का भारत पर विनाशकारी प्रभाव :

1. गाँव की स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था का छिन्न-भिन्न होना।
2. हस्तशिल्प उद्योगों का पतन।
3. भारतीय धन अथवा संपदा का निष्कासन।
4. उद्योगों का पतन।
5. पश्चिमी शिक्षा लागू होना।
6. निर्यात की अपेक्षा आयात पर दबाव देना।
7. भारतीय कृषि एवं किसानों पर दुष्प्रभाव।
8. ईसाई धर्म का प्रचार।

उपनिवेशवाद

किसी शक्तिशाली देश द्वारा दूसरे निर्बल और गरीब देशों को अपने अधीन लेकर उनसे आर्थिक लाभ उठाने की प्रवृति उपनिवेशवाद कहलाती है। इसका मुख्य आधार वाणिज्यवाद था। इस प्रकार की नीति का अनुसरण यूरोप में सामान्यत: 1500 ई. से 1750 ई. के बीच किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस उपनिवेशवाद ने नया रूप धारण कर लिया तथा अब यह उपनिवेशवाद से साम्राज्यवाद बन गया।

इतिहास में प्राय: पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक उपनिवेशवाद का काल रहा। इस काल में यूरोप के लोगों ने विश्व के विभिन्न भागों में उपनिवेश बनाये। इस काल में उपनिवेशवाद में विश्वास के मुख्य कारण थे :

- लाभ कमाने की लालसा।
- मातृदेश की शक्ति बढ़ाना।
- मातृदेश में सजा से बचना।
- स्थानीय लोगों का धर्म बदलवाकर उन्हें उपनिवेशिक धर्म में शामिल करना।

कुछ उपनिवेशी यह भी सोचते थे कि स्थानीय लोगों को ईसाई बनाकर तथा उन्हें सभ्यता का दर्शन कराकर वे उनकी सहायता कर रहे हैं। किन्तु वास्तविकता में उपनिवेशवाद का अर्थ था-आधिपत्य, विस्थापन एवं मृत्यु। उपनिवेश को मातृदेश के साम्राज्य का भाग बना लिया जाता था। अत: उपनिवेशवाद का साम्राज्यवाद से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

उपनिवेशों की स्थापना के कारण

व्यापारिक क्रांति को सफल बनाने में भौगोलिक खोजों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन भौगोलिक खोजों के साथ ही उपनिवेशवाद का आरंभ हुआ। स्पेन, पुर्तगाल, डच, फ्रांस एवं इंग्लैण्ड आदि यूरोपीय देशों ने सुदूर देशों में उपनिवेश स्थापित किए। यूरोप में उपनिवेशवाद के आरंभ के निम्नलिखित कारण थे :

1. **ट्रिपल 'जी' नीति** (Gold-Glory-God) : भौगोलिक खोजों के फलस्वरूप कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज ने यूरोपीय देशों में स्वर्ण जैसी बहुमूल्य धातु के संग्रह की प्रतिस्पर्धा आरंभ की। स्वर्ण-संग्रह की प्रतिस्पर्द्धा की स्थिति यह थी कि समस्त यूरोप में 'अधिक स्वर्ण, अधिक समृद्धि, अधिक कीर्ति' का नारा बुलंद हुआ। अब समस्त यूरोपीय राष्ट्रों का प्रमुख ध्यान सोना, कीर्ति एवं ईश्वर पर केन्द्रित हो गया। उपनिवेशों की स्थापना से यूरोपीय देशों को सोना भी मिला, कीर्ति भी फैली एवं धर्म का प्रचार भी हुआ। अत: ट्रिपल जी नीति नि:संदेह उपनिवेशों की स्थापना का एक कारण अवश्य थी।

2. **कच्चे माल की प्राप्ति** : व्यापारिक समृद्धि के फलस्वरूप यूरोपीय देशों में कई उद्योगों की स्थापना हुई। यूरोप में इन उद्योगों के लिए आवश्यक कच्चे माल की कमी थी। अत: यूरोपीय देशों ने कच्चे माल की प्राप्ति हेतु अफ्रीकी एवं एशियाई देशों में उपनिवेशों की स्थापना की।

3. **निर्मित माल की खपत** : उद्योगों की स्थापना एवं कच्चे माल की उपलब्धता से औद्योगिक उत्पादन तीव्र गति से बढ़ा। चूंकि इस समय सभी यूरोपीय देश आर्थिक संरक्षण की नीति पर चल रहे थे, अत: इस निर्मित माल को बेचने के लिए भी उपनिवेशों की स्थापना की गयी। अत: प्रत्येक उपनिवेश को शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा जबरन निर्मित माल की खरीद व कच्चे माल के निर्यात हेतु बाध्य किया गया।

4. **जनसंख्या में वृद्धि** : यूरोप के विभिन्न देशों में औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप नगरों की जनसंख्या में अत्याधिक वृद्धि हुई। कालांतर में अतिशेष जनसंख्या को बसाने के लिए भी उपनिवेशों की स्थापना को बल मिला।

5. **प्रतिकूल जलवायु** : यूरोपवासियों को व्यापारिक प्रगति एवं नवीन देशों से संपर्क के फलस्वरूप कई नवीन वस्तुओं का भी ज्ञान हुआ, आलू, तंबाकू, भुट्टा आदि का ज्ञान भी उन्हें पूर्वी देशों के साथ संपर्क से ही हुआ। गर्म मसाले, चीनी, कॉफी, चावल आदि के भी अब वे आदी हो गये थे। प्रतिकूल जलवायु के कारण ये सभी वस्तुएँ यूरोपीय देशों में उगाना संभव न था। अत: यूरोपीय विशेषत: अंग्रेज चाहते थे कि उन्हें ऐसे प्रदेश प्राप्त हो जायें जहाँ इनकी खेती की जा सके। अत: अनुकूल जलवायु वाले स्थानों में उपनिवेश स्थापना की विचारधारा को बल मिला।

6. **समृद्धि की लालसा** : भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप प्रारंभिक उपनिवेश पुर्तगाल एवं स्पेन ने स्थापित किये। इससे परिणामस्वरूप उनकी समृद्धि में आशातीत वृद्धि हुई। अत: इनकी समृद्धि को देखते हुए समृद्धि की लालसा में अन्य यूरोपीय देश भी उपनिवेश स्थापित करते हुए अग्रसर हुए।

©BSEH Bhiwani Not to be Reprinted

साम्राज्यवाद : जब कोई शक्तिशाली एवं उन्नत देश किसी कमजोर और पिछड़े हुए देश पर बलपूर्वक अपना अधिकार स्थापित करता है और उसका राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से शोषण करता है तब उस शक्तिशाली देश की इस इच्छा और प्रवृत्ति को साम्राज्यवाद कहा जाता है। साम्राज्यवादी देश जिस देश पर अपना अधिकार स्थापित करता है वह देश उस साम्राज्यवादी देश का उपनिवेश कहलाता है। ऐसी अवस्था में साम्राज्यवादी देश शासित देशों की जनता के हितों की उपेक्षा कर अपने देश के हितों के लिए उनका शोषण करते हैं। साम्राज्यवादी देश उपनिवेश के आर्थिक एवं प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर शोषण करता है। 1947 ई. से पूर्व हमारा देश भारत भी ब्रिटिश शासन के अधीन था। दूसरे शब्दों में स्वतंत्रता से पूर्व भारत ब्रिटेन का एक उपनिवेश था।

अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्पादन की तकनीक में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन हुए जिनके परिणामस्वरूप गृह उद्योगों के स्थान पर बड़े बड़े कारखानों का निर्माण हुआ जिसके कारण हाथ की अपेक्षा मशीन से तथा घर की अपेक्षा कारखानों में तथा कम की अपेक्षा अधिक उत्पादन होने लगा। इन परिवर्तनों को 'औद्योगिक क्रांति' कहा जाता है। अनुकूल परिस्थितियों के कारण सर्वप्रथम इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति आरंभ हुई। शीघ्र ही यूरोप के अन्य देशों में भी इसका प्रसार हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी में संयुक्त राज्य अमेरिका एवं एशियाई देश जापान भी औद्योगिक देश बन गए। इन औद्योगिक देशों में विभिन्न वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक उत्पादन किया जाने लगा। फलस्वरूप इस अधिक माल को बेचने के लिए नए बाजार खोजना आवश्यक हो गया। साथ ही इन औद्योगिक देशों को अपने उद्योगों को चलाने के लिए कच्चे माल की भारी आवश्यकता महसूस होने लगी। इन देशों की ये आवश्यकताएँ एशिया और अफ्रीका के देशों से पूरी की जाने लगी क्योंकि औद्योगिक दृष्टि से ये देश पिछड़े हुए थे। यूरोप के औद्योगिक देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका एवं जापान ने एशिया तथा अफ्रीका के पिछड़े देशों को अपने अधीन करना आरंभ कर दिया जिसने साम्राज्यवादी व्यवस्था को जन्म दिया।

साम्राज्यवाद के प्रसार में सहायक परिस्थितियाँ

उन्नीसवीं शताब्दी में साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। साम्राज्यवादी देशों ने इनका पूरा लाभ उठाया। यूरोपीय देशों में साम्राज्यवाद की भावना के विकास के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। इन सब का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है :

1. यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति : उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में आधुनिक ढंग के महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। लघु उद्योगों का स्थान बड़े-बड़े कारखानों ने ले लिया जिससे बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। उत्पादन बढ़ने से कच्चे माल की कमी महसूस की जाने लगी। आवश्यकता से अधिक उत्पादन होने से तैयार की

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

गई वस्तुओं को बेचने के लिए भी नई मंडियों की आवश्यकता होने लगी। ऐसी स्थिति में यूरोपीय देशों के लिए दूरवर्ती स्थानों में उपनिवेश प्राप्त करने अति आवश्यक हो गये। परिणामस्वरूप इन देशों ने एशिया एवं अफ्रीका के बहुत से देशों पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार साम्राज्यवाद की भावना को प्रोत्साहन मिला।

2. यूरोपीय देशों में अतिरिक्त पूँजी : औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप यूरोप के देशों में अत्यधिक धन इकट्ठा हो गया। उन देशों में बड़े-बड़े पूँजीपतियों का एक वर्ग तैयार हो गया। पूँजीपतियों की अतिरिक्त पूँजी कहाँ लगाई जाए, अब यह प्रश्न उठने लगा। उनके अपने देशों में ब्याज की दरें बहुत कम थी। यह देखकर बड़े-बड़े पूँजीपति यही अच्छा समझते थे कि अतिरिक्त धन अपने देश के उपनिवेशों में रेल, खानों, कारखानों आदि में लगाया जाए ताकि उन्हें पर्याप्त लाभ भी मिले और उनकी पूँजी भी सुरक्षित रहे। इस प्रकार यूरोपीय देशों के पूँजीपतियों ने अपनी सरकारों को उपनिवेश स्थापना के लिए प्रेरित किया।

3. ईसाई धर्म प्रचारकों का योगदान : एशिया और अफ्रीका की पिछड़ी जातियों में ईसाई धर्म फैलाने के लिए यूरोप के ईसाई पादरियों से भी साम्राज्यवाद को भरपूर समर्थन मिला। पादरी लोग नए उपनिवेशों की स्थापना से बहुत प्रसन्न होते थे क्योंकि उन्हें ईसाई धर्म फैलाने का एक नया क्षेत्र मिल जाता था। ईसाई पादरियों के लिए साम्राज्य विस्तार धर्म प्रसार का एक अच्छा साधन बन जाता था।

4. यूरोपियन राष्ट्रवाद की भावना : उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में यूरोप में उग्र राष्ट्रवाद की भावना प्रबल हो गई थी। सभी प्रमुख यूरोपीय राष्ट्र विश्व की महान शक्ति बनने के इच्छुक हो गए थे और वे एक दूसरे से अधिक उपनिवेश प्राप्त करके अधिक शक्तिशाली बनना चाहते थे। उपनिवेश प्राप्त करना विभिन्न राष्ट्रों की शक्ति एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया था। इसलिए यूरोपीय राष्ट्रों के बीच उपनिवेशों के लिए दौड़ चल पड़ी और यूरोपीय देशों की इस भावना ने साम्राज्यवाद को प्रोत्साहित किया।

5. सभ्य बनाने का अभियान : यूरोपीय लोग अपने आपको अधिक सभ्य और श्रेष्ठ मानते थे। वे एशिया एवं अफ्रीका के लोगों को हीन तथा असभ्य मानते थे। यूरोपीय देशों के अनुसार केवल उनकी सभ्यता ही विश्व में विकसित सभ्यता थी। उन्होंने अपनी-अपनी सभ्यता का विकास अविकसित देशों में करना आवश्यक समझा। उनका कहना था कि हीन जातियों को सभ्य बनाना श्रेष्ठ जातियों का कर्तव्य है। अधिक से अधिक उपनिवेशों को अपने अधीन लाने को वह अपने राष्ट्र के लिए सम्मान का चिह्न मानते थे।

6. यातायात और संचार के साधन : यूरोपीय देशों में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप यातायात एवं संचार के साधनों का भी विकास हुआ। भाप की शक्ति से चलने वाले जहाजों तथा तार के आविष्कार के परिणामस्वरूप दूर-दूर के देशों पर अधिकार करना एवं उन पर शासन करना आसान हो गया। यद्यपि यातायात के साधनों का विकास बहुत पहले हो चुका था लेकिन उनका वास्तव में प्रभाव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में दृष्टिगोचर हुआ। इन संसाधनों की सहायता से उपनिवेश विस्तार की प्रक्रिया काफी आगे बढ़ी।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

7. एशिया एवं अफ्रीका में अनुकूल परिस्थितियाँ : एशिया एवं अफ्रीका में अनुकूल परिस्थितियाँ भी यूरोपीय साम्राज्य के विस्तार में सहायक सिद्ध हुईं। इन देशों में औद्योगिक क्रांति नहीं आई थी। एशिया एवं अफ्रीका के कारीगर तथा शिल्पकार यद्यपि उत्तम वस्तुएँ तैयार करते थे परंतु मशीनों की अपेक्षा हाथों से तैयार की गई ये वस्तुएँ सीमित मात्रा में और महंगी होती थी जो यूरोपीय कारखानों में मशीनों से ज्यादा मात्रा में तैयार की गई सस्ती वस्तुओं के सामने कहीं नहीं ठहरती थी। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप यूरोपीय देशों ने आधुनिक ढंग के शस्त्र बना लिए थे और शक्तिशाली सेनाओं का निर्माण कर लिया था। इससे उनके लिए एशियाई एवं अफ्रीकी देशों की पिछड़ी एवं दुर्बल सेनाओं को पराजित कर नियंत्रित करना और आसान हो गया। इसके अतिरिक्त उस समय एशिया और अफ्रीका के देशों की शासन व्यवस्था निर्बल थी जिसके कारण यूरोप के शक्तिशाली देशों के लिए इन पिछड़े देशों पर अधिकार करना संभव और आसान हो गया।

साम्राज्यवाद का विकास

एशिया में साम्राज्यवाद : एशिया एक ऐसा महाद्वीप था जहाँ से अनेक प्रकार का कच्चा माल जैसे कपास, चाय, नील, कॉफी, तंबाकू, चीनी, कोयला, लोहा, टिन, तांबा इत्यादि प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा सकता था। यूरोपीय देश यहाँ अपने उपनिवेश स्थापित करके निर्मित माल को उनके बाजारों में अधिक लाभ में बेच सकते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक लगभग समस्त एशिया महाद्वीप पश्चिमी शक्तियों के साम्राज्यवाद की लपेट में आ गया था। एशिया में उपनिवेश स्थापित करने वाले प्रमुख यूरोपीय देश इंग्लैंड, फ्रांस, पुर्तगाल, हॉलैंड, जर्मनी तथा रूस थे।

1. इंग्लैंड के उपनिवेश : यूरोपीय शक्तियों में सबसे बड़ी साम्राज्यवादी शक्ति इंग्लैंड थी जिसने एशिया के अधिकतर भागों पर अपना अधिकार स्थापित किया।

क)भारत : भारत के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से पुर्तगाली, डच, अंग्रेज और फ्रांसीसी लोग भारत आए। कुछ समय तक पुर्तगाली एवं डच शक्तियों ने भारत में व्यापार किया परंतु अट्ठारहवीं शताब्दी के आरंभ में उनकी शक्ति भारत में लगभग समाप्त हो गई। अब भारत में केवल अंग्रेज और फ्रांसीसी ही रह गए। इन दोनों शक्तियों में भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से 1744 ई.से 1763 ई. के बीच कर्नाटक के तीन युद्ध हुए जिनमें अंतिम विजय अंग्रेजों की हुई। इससे पूर्व 1757 ई. में बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी के युद्ध में हरा कर अंग्रेज बंगाल में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित कर चुके थे। 1764 ई. में बक्सर के युद्ध में उन्होंने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर ली थी। अंग्रेजों ने मैसूर पर भी 1799 ई. में टीपू सुल्तान को हराने के पश्चात् अधिकार कर लिया। 1818 ई. तक उन्होंने मराठा युद्धों के परिणामस्वरूप मराठा शक्ति को समाप्त कर दिया। अंग्रेजों ने 1843 ई. में सिंध तथा 1849 ई. में पंजाब पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार 1856 ई. में लॉर्ड डलहौजी के काल तक अंग्रेजों का लगभग सारे भारत पर अधिकार हो चुका था।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

ख) **बर्मा :** इंग्लैंड ने बर्मा के विरुद्ध तीन युद्ध किए। ये युद्ध 1824 ई. से 1885 ई. के बीच किए। इन युद्धों के परिणामस्वरूप बर्मा के समस्त प्रदेश ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य में मिला लिए गए।

ग) **श्रीलंका :** श्रीलंका पर पहले पुर्तगालियों ने, फिर डच लोगों ने और अंत में अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने लंका में चाय और रबड़ के बाग लगाकर अत्यधिक धन कमाया। इंग्लैंड का श्री लंका पर अधिकार 1948 ई. तक कायम रहा।

घ) **मलाया :** अंग्रेज दक्षिण पूर्व एशिया में भी अपने पाँव पसारना चाहते थे। 1840 ई. में उन्होंने सिंगापुर को अपने अधिकार में ले लिया और 1865 ई. में अंग्रेजों ने मलाया प्रायद्वीप पर भी अधिकार कर लिया।

ड) **तिब्बत :** 1904 ई. में तिब्बत को पराजित करने के पश्चात् दलाई लामा के साथ हुई संधि के अनुसार ब्रिटिश भारत तथा तिब्बत के बीच व्यापार आरंभ हो गया और तिब्बत व्यावहारिक रूप से अंग्रेजों के प्रभाव में आ गया।

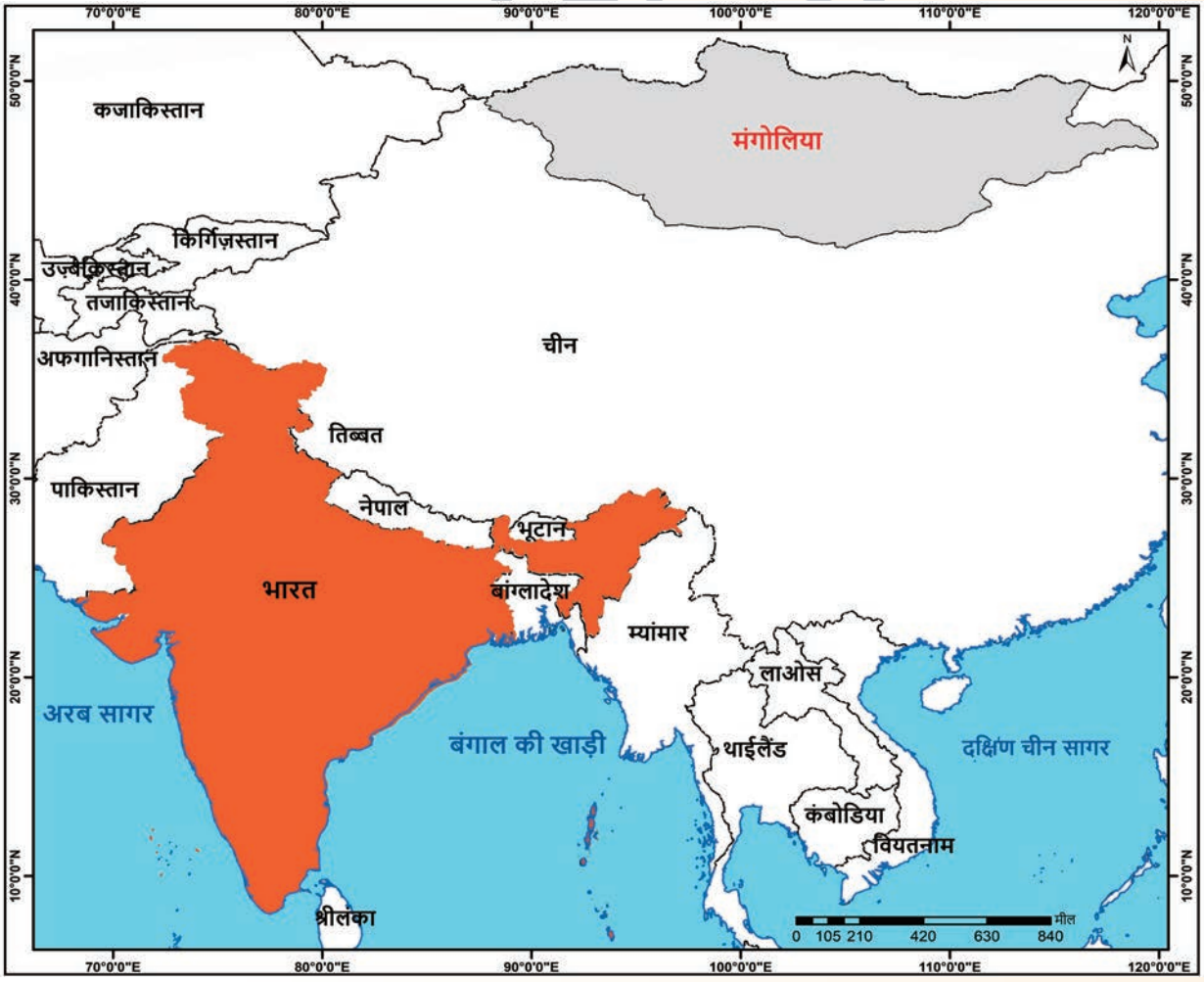

दक्षिणी-पूर्वी एशिया का मानचित्र

गतिविधि: भारत के मानचित्र पर ब्रिटेन के उपनिवेशों की स्थिति दर्शाओ

2. हॉलैंड के उपनिवेश : हॉलैंड के डचों ने व्यापार करने तथा उपनिवेश स्थापित करने के लिए सर्वप्रथम दक्षिण पूर्वी देशों के द्वीपों की ओर ध्यान दिया। 1602 ई. में डचों ने पुर्तगालियों को हराने के पश्चात बैंटम में अपने कारखाने खोले और यह उनका महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया। 1605 ई. में डचों ने पुर्तगालियों से एम्बोयना को विजित कर लिया और अपना प्रभाव बढ़ा लिया। 1619 ई. में उन्होंने जकार्ता को भी जीत लिया और बाटेविया को अपनी राजधानी बना लिया। इस प्रकार डचों का जावा, सुमात्रा तथा बोर्नियो पर अधिकार हो गया। 1641 ई. में डचों ने पुर्तगालियों से मलक्का भी प्राप्त कर लिया। इसके फलस्वरूप हॉलैंड का गर्म मसालों के द्वीपों पर प्रभाव बहुत बढ़ गया।

3. पुर्तगाल के उपनिवेश : 1498 ई. में पुर्तगाली नाविक वास्को-डी-गामा भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कालीकट के स्थान पर पहुँचा और यूरोप से भारत आने के लिए नए समुद्री मार्ग का पता लगाया। इससे पुर्तगालियों ने भारत तथा अन्य पूर्वी देशों में अपने उपनिवेश स्थापित किए। सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों ने अपने प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारत में गोवा, दमन-दीव, दादरा-नगर हवेली आदि प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इनके अतिरिक्त पुर्तगालियों ने दक्षिण पूर्वी एशिया के तिमर तथा चीन के निकट मकाओ द्वीप को भी प्राप्त कर लिया।

4. फ्रांस के उपनिवेश :

क) पांडिचेरी, चंद्रनगर, मॉरीशस, माही आदि: फ्रांस ने भारत में 1674 ई. में पांडिचेरी के स्थान पर अपनी बस्तियाँ स्थापित की और पांडिचेरी को फ्रांस ने अपनी भारतीय बस्तियों की राजधानी बनाया। इसके पश्चात् चंद्रनगर में भी फ्रांसीसी बस्तियाँ स्थापित की गईं। फ्रांसीसी कंपनी ने 1721 ई. में मॉरीशस पर अधिकार कर लिया। 1725 ई. में मालाबार तट पर स्थित माही के स्थान पर और 1739 ई. में कालीकट में भी फ्रांसीसी बस्तियाँ स्थापित कर ली।

ख) दक्षिण पूर्वी एशिया के उपनिवेश : फ्रांस नें 1862 ई. में चीन में तथा 1865 ई. में कंबोडिया में अपनी बस्तियाँ स्थापित कर ली। 1885 ई. में ही फ्रांस ने चीन को पराजित कर के टांकिन्ग तथा अनाम पर अधिकार कर लिया। इन सभी देशों को सामूहिक रूप से फ्रांसीसी इण्डोचीन कहा जाता है।

गतिविधि : मानचित्र पर फ्रांस के द्वारा भारत में जो बस्तियां स्थापित की उनकी स्थिति का पता करो।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

5. जर्मनी के उपनिवेश : जर्मनी ने भी एशिया में कुछ उपनिवेश प्राप्त कर लिए। उसने न्यू गुयाना के उत्तर पूर्वी-भाग पर अधिकार कर लिया। 1898 ई. में उसने चीन से क्योचू का प्रदेश ठेके पर ले लिया। जर्मनी ने प्रशांत महासागर में कैरोलिन द्वीप तथा मार्शल द्वीप पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

6. रूस के उपनिवेश : रूसी साम्राज्य ने भी मध्य एशिया की ओर अपने साम्राज्य का विस्तार करने के प्रयत्न आरंभ कर दिये। 1864 ई. में रूस ने खोकंद, बुखारा एवं खीवा पर अधिकार कर लिया। 1865 ई. में रूस ने ताशकन्द को रूसी साम्राज्य में मिला लिया। 1867 ई. में तुर्किस्तान का नया प्रांत रूसी साम्राज्य में मिलाया गया और 1868 ई. में समरकंद पर भी रूस ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। 1818 ई. में रूस ने चीन में लियोतुंग के महत्वपूर्ण प्रायद्वीप का 25 वर्षों के लिए ठेका प्राप्त कर लिया।

7. चीन में उपनिवेशवाद : चीन को भी यूरोपीय साम्राज्यवाद का शिकार होना पड़ा। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, रूस, अमेरिका और यहाँ तक कि जापान ने भी चीनी प्रदेशों को अपने प्रभाव क्षेत्र में लेने का प्रयत्न किया। आरंभ में इंग्लैंड और फ्रांस चीन के अफीम के व्यापार में बड़ी रुचि ले रहे थे और जब चीन की सरकार ने इसका विरोध किया तो उन्होंने चीन के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। दो अफीम युद्धों 1839 ई. से 1842 ई. तथा 1854-1858 ई. में चीन की हार हुई जिसके परिणामस्वरूप उसे पहले अपनी 5 और फिर 9 बंदरगाहें विदेशी व्यापार के लिए खोलनी पड़ी और हांगकांग पर भी अंग्रेजी अधिकार स्वीकार करना पड़ा।

चीन की दुर्बलता का लाभ उठाकर अन्य यूरोपीय देश, अमेरिका तथा जापान भी चीन में अपना प्रभाव बढ़ाने लग गए। 1895 ई. में जापान ने चीन को एक युद्ध में पराजित कर उसके कोरिया और फारमोसा आदि भागों पर अधिकार कर लिया। रूस ने भी मंचूरिया के एक बड़े भाग और पोर्ट आर्थर की प्रसिद्ध बंदरगाह पर अधिकार कर लिया। जर्मनी ने 1897 ई. मे क्योचू पर अपना अधिकार जमा लिया। 1898 ई. में फ्रांस ने क्वांगचू प्रांत को हथिया लिया और उसी वर्ष अंग्रेजों ने बेई-हे-बेई को अपने अधीन कर लिया। अभी ये सभी देश चीन को आपस में बांटने का प्रयत्न कर ही रहे थे कि अमेरिका भी इस दौड़ में शामिल हो गया। उसने चीन के लिए ''खुले द्वार की नीति'' का समर्थन किया और इस बात पर जोर दिया कि चीन की सभी बंदरगाहें सभी विदेशी शक्तियों के लिए एक समान शर्तों पर खोल दी जाएँ। इस सलाह को सभी देशों ने मान लिया और इस नीति से चीन का विभाजन होने से बच गया। चीन का आर्थिक शोषण लगातार जारी रहा और बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक चीन साम्राज्यवादियों के चंगुल में फंसा रहा।

अफ्रीका में साम्राज्यवाद : एशिया के सामान अफ्रीका भी एक विशाल महाद्वीप है। दीर्घकाल से अफ्रीका के संबंध मे यूरोपीय देशों के लोगों को बहुत कम ज्ञान था और अफ्रीका को 'अंध महाद्वीप' कहा जाता था। अनुकूल परिस्थितियों के परिणामस्वरूप 1875 ई. के पश्चात यूरोपीय शक्तियों में अफ्रीका में अधिक से अधिक उपनिवेश प्राप्त करने के लिए आपसी संघर्ष प्रारंभ हो गया। आने वाले 40 वर्षों में यूरोपीय शक्तियों में अफ्रीका

©RSET, Bhiwani Not to be Reprinted

के बंटवारे के लिए संघर्ष चलता रहा। परिणामस्वरूप अफ्रीका के केवल कुछ प्रदेशों को छोड़कर समस्त अफ्रीका में यूरोपीय शक्तियों के उपनिवेश स्थापित हो गए। अफ्रीका के इस विभाजन में बेल्जियम, पुर्तगाल, इंग्लैंड, फ्रांस तथा जर्मनी ने भाग लिया।

क) **बेल्जियम के उपनिवेश :** अफ्रीका में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए सबसे पहले बेल्जियम ने पग उठाया। बेल्जियम के शासक सम्राट लियोपोड द्वितीय की सहायता से हेनरी स्टेनले नामक एक साहसी व्यक्ति ने 1878 ई. में कांगो के प्रदेश पर अधिकार कर लिया। कांगो नदी के आसपास के क्षेत्रों को मिलाकर 1908 ई. में इसे 'कांगो फ्री स्टेट' का नाम दिया गया। यद्यपि यह एक स्वतंत्र राज्य नहीं था अपितु बेल्जियम के अधीन एक उपनिवेश था।

ख) **इंग्लैंड के उपनिवेश :** अफ्रीका के बंटवारे में इंग्लैंड को सबसे बड़ा भाग प्राप्त हुआ। इंग्लैंड ने अफ्रीका में केप ऑफ गुड होप, नटाल, ट्रांसवाल तथा औरेंज फ्री स्टेट में अपने उपनिवेश स्थापित किए। 1909 ई. में इन राज्यों को मिलाकर दक्षिण अफ्रीका का संयुक्त राज्य बना दिया गया इसके अतिरिक्त इंग्लैंड ने रोडेशिया, टंगानिका, गोल्डकोस्ट, जांबिया, नाइजीरिया, सोमालीलैंड में भी अपने उपनिवेश स्थापित कर लिए। अफ्रीका में इंग्लैंड के सबसे महत्वपूर्ण प्रदेश मिस्र और सूडान थे। स्वेज़ नहर के खुलने के पश्चात् इंग्लैंड के लिए इन क्षेत्रों का महत्व बहुत बढ़ गया था।

ग) **फ्रांस के उपनिवेश :** अफ्रीका के विभाजन में फ्रांस ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। फ्रांस ने अफ्रीका में अल्जीरिया, ट्यूनीशिया, सेनीगल, मोरक्को, पश्चिमी गिनी तथा मेडागास्कर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। फ्रांस अपना प्रभाव मिस्र और सूडान में भी बढ़ाना चाहता था परंतु अंग्रेजों के कड़े विरोध के कारण सफल नहीं हो सका।

घ) **पुर्तगाल के उपनिवेश :** बेल्जियम द्वारा कांगो पर अधिकार करने के पश्चात् पुर्तगाल ने कांगो के निकट दक्षिण में अंगोला की बस्ती प्राप्त कर ली। पुर्तगाल ने अफ्रीका के दक्षिण-पूर्व में स्थित मोजांबिक तथा उसके साथ के प्रदेश भी आसानी से प्राप्त कर लिए। इस उपनिवेश को 'पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका' कहा जाता था।

ड) **जर्मनी के उपनिवेश :** यद्यपि जर्मनी का चांसलर बिस्मार्क आरंभ में उपनिवेशवाद की स्थापना के विरुद्ध था परंतु जर्मन देशभक्तों, उद्योगपतियों तथा व्यापारियों द्वारा विवश किये जाने के पश्चात जर्मनी भी उपनिवेशवाद की दौड़ में शामिल हो गया। 1883 ई. में जर्मनी ने दक्षिण अफ्रीका में कुछ प्रदेश प्राप्त करके अपना उपनिवेश बना लिया जिसे जर्मन दक्षिण अफ्रीका कहा जाने लगा। तत्पश्चात् जर्मनी ने पश्चिमी अफ्रीका में टोगोलैंड तथा कैमरून के प्रदेश अपने अधिकार में ले लिए। पूर्वी अफ्रीका में भी जर्मनी ने जंजीबार तथा इसके पड़ोस का बहुत बड़ा क्षेत्र प्राप्त कर लिया जो जर्मनी पूर्वी अफ्रीका कहलाने लगा।

©BSEH Bhiwani Not to be Reprinted

च) **इटली के उपनिवेश :** इटली ने अफ्रीका में एरिट्रीया, सोमालीलैंड तथा लीबिया के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। वह अफ्रीका के अन्य प्रदेशों पर भी अपना अधिकार बढ़ाना चाहता था परंतु एबेसीनिया से मिली पराजय के परिणामस्वरूप इटली का अफ्रीकी देशों में फैलाव रुक गया। यद्यपि बाद में तुर्की से हुए एक युद्ध के पश्चात् इटली का ट्रीपोली पर 1912 ई. में अधिकार स्थापित हो गया।

गतिविधि: अफ्रीका महाद्वीप के मानचित्र पर पश्चिमी देशों के उपनिवेशों को दर्शाइए

साम्राज्यवाद का प्रभाव

साम्राज्यवाद के एशिया, अफ्रीका तथा यूरोप के अनेक देशों पर दूरगामी प्रभाव पड़े।

1. **यूरोप के देशों पर प्रभाव :** जिन यूरोपियन देशों में औद्योगिक क्रांति आई थी, वे सभी देश अपने-अपने देशों के कारखानों में बहुत अधिक माल बनाने लगे। इस माल को उन्होंने स्वयं उपनिवेशों में बेचकर अत्यधिक लाभ कमाना आरंभ कर दिया। इन उपनिवेशों से ही ये देश सस्ते दामों पर कच्चा माल खरीदने लगे जिससे सभी यूरोपीय देश व्यापार के कारण अधिक धनवान हो गए। दूसरे यूरोपीय देशों में अधिक से अधिक उपनिवेश प्राप्त करने की होड़ लग गई। अधिक उपनिवेश प्राप्त करने की इच्छा के कारण इन देशों ने अपनी-अपनी सेनाओं को अधिक शक्तिशाली बनाना आरंभ कर दिया, जिसके कारण सभी यूरोपीय देशों में आपसी द्वेष बढ़ गया और वे एक दूसरे के विरुद्ध दो गुटों में बंट गए। यूरोपीय देशों की आपसी शत्रुता के कारण ही प्रथम विश्व युद्ध 1914 ई. से 1918 ई. तक हुआ जिसके बहुत विनाशकारी परिणाम निकले।

2. **एशिया पर साम्राज्यवाद के प्रभाव।**

क) **सकारात्मक प्रभाव :** साम्राज्यवादी देशों ने अपने अधीन उपनिवेशों में पश्चिमी शिक्षा लागू की इन देशों के लोगों को दूसरे देशों की राजनैतिक प्रणालियों के अध्ययन का अवसर मिला। परिणामस्वरूप इन देशों में राष्ट्रीय जागृति का उत्थान हुआ। साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपतियों ने अधिक लाभ कमाने के लिए उपनिवेशों में नए उद्योग स्थापित किए जिससे इन लोगों को रोजगार प्राप्त करने के नए अवसर प्राप्त हुए। साम्राज्यवादी देशों ने अपने-अपने उपनिवेशों में व्यापार बढ़ाने हेतु अधिक-से-अधिक सड़कें बनवाई तथा रेल की पटरियाँ बिछवाई जिससे इन उपनिवेशों में यातायात के साधनों का बहुत विकास हुआ।

ख) **विनाशकारी प्रभाव :** साम्राज्यवादी देशों ने अपने-अपने उपनिवेशों से अपने स्वयं के देशों के उद्योगों

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

के लिए सस्ते दामों में कच्चा माल खरीदना आरंभ कर दिया और अपने देशों में निर्मित माल अधिक दामों पर बेचना आरंभ कर दिया और साथ ही उन्होंने उपनिवेशों के निजी उद्योगों में बने हुए माल को बेचने के लिए अनेक प्रतिबंध लगा दिए जिससे उपनिवेशों के उद्योग नष्ट हो गए। साम्राज्यवादी देशों ने अपने उपनिवेशों के किसानों का अधिक से अधिक शोषण किया जिससे उपनिवेशों के किसान भी निर्धन हो गए। साम्राज्यवादी देशों के लोग अपने आप को सभ्य मानते थे और उपनिवेशों के लोगों को नीच समझते थे। वे इन लोगों से मेलजोल स्थापित नहीं करते थे। इन लोगों के लिए होटल, क्लब तथा रेलगाड़ी के डिब्बे भी अलग होते थे। उपनिवेशों के लोगों को उच्च पदों पर भी नहीं रखा जाता था। साम्राज्यवादी देशों के ईसाई प्रचारकों ने उपनिवेश के लोगों को बलपूर्वक ईसाई बनाना आरंभ कर दिया। उपनिवेशों के लोगों को कई प्रकार के प्रलोभन दिए जाते थे और धर्म परिवर्तन करवाया जाता था जिससे इनमें परस्पर शत्रुता बढ़ी।

3. साम्राज्यवाद का भारत पर विनाशकारी प्रभाव: यद्यपि भारत पर अंग्रेजों के अधिकार के कई अच्छे प्रभाव पड़े। उन्होंने भारत में आधुनिक न्याय प्रणाली लागू की एवं कानून का शासन स्थापित किया। अंग्रेजों ने भारत में आधुनिक पुलिस व्यवस्था को आरंभ किया। उन्होंने भारत में यातायात एवं संचार के साधनों का विकास किया। उन्होंने भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के प्रयत्न किए। आधुनिक शिक्षा प्रणाली लागू करके भारतीयों में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न की। परन्तु अंग्रेजों ने यह सब अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए किया। साम्राज्यवाद के भारत में निम्नलिखित विनाशकारी प्रभाव पड़े-

क) गाँवों की स्वावलंबी अर्थव्यवस्था का छिन्न-भिन्न होना : भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व गांव में किसानों के अतिरिक्त अन्य उद्योग करने वाले लोग भी रहते थे जैसे कुम्हार, बढ़ई, लोहार, धोबी, नाई, जुलाहे, मोची, वैद्य, तेली, कहार आदि। ये सभी लोग इकट्ठे मिलकर गाँव की सभी आवश्यकताओं को पूरा कर लेते थे। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से प्रत्येक गाँव स्वावलंबी था। राजस्व अथवा लगान की अदायगी फसलों के रूप में की जाती थी, परंतु अंग्रेजों ने भारत में लगान संबंधी नई नीतियाँ लागू कर दी। लगान अब निश्चित रकम के रूप में वसूल किया जाने लगा जिससे किसान अपनी फसलें बेचने के लिए विवश होने लगे। अंग्रेजों ने भूमि को गिरवी रखने अथवा बेचने की वस्तु बना दिया, जिससे किसानों को भूमि से बेदखल किया जा सकता था। गाँवों में बाहर से बहुत-सी निर्मित वस्तुएँ पहुँचने के कारण स्थानीय दस्तकारों के उद्योग भी नष्ट हो गए। इन सब कारणों से गाँवों की आत्मनिर्भरता समाप्त हो गई।

ख) भारतीय धन अथवा संपदा का निष्कासन : अंग्रेजों के भारत पर अधिकार करने के पश्चात् भारतीय धन अथवा संपदा का एक बहुत बड़ा भाग निरंतर इंग्लैंड जाता रहा जिसके बदले में भारत को कोई लाभ प्राप्त नहीं होता था। इसे आर्थिक दोहन अथवा संपदा का निष्कासन कहा जाता था। अंग्रेजों के भारत में आगमन से पूर्व अनेक विदेशी राजवंशों ने भारत में अपने राज्य स्थापित किए। वे भारत में ही स्थायी रूप से बस गए। उन्होंने

©RSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

कर के रूप में एकत्र किए धन को भारत में ही खर्च किया। उन्होंने यह धन राज्य विस्तार करने पर अथवा नहरों, सड़कों और सुंदर राजमहल बनाने या भोग विलास का जीवन व्यतीत करने पर खर्च किया। इस धन से भारतीय उद्योगों तथा व्यापार का विकास हुआ और हजारों भारतीय लोगों को रोजगार मिला। लेकिन अंग्रेज भारत में अपना शासन स्थापित करने के पश्चात् भी विदेशी बने रहे और उन्होंने भारत से प्राप्त किये धन का अधिकांश भाग भारत की अपेक्षा इंग्लैंड में खर्च किया। यह धन सैनिक तथा असैनिक अधिकारियों को भारी वेतन तथा पेंशन के रूप में भारतीय राजकोष से दिया जाता था। अंग्रेजी कंपनी के शासनकाल में कंपनी के कर्मचारियों ने भारतीय शासकों, जमीदारों अथवा व्यापारियों से उचित या अनुचित ढंग से प्राप्त किया धन इंग्लैंड भेजना आरंभ कर दिया। एक अनुमान के अनुसार केवल 1758 ई. से 1765 ई. तक लगभग 60 लाख पौंड की संपदा इंग्लैंड भेजी गई। व्यापार से भी भारी मुनाफा होता था। वह धन भी इंग्लैंड भेजा जाता था। चौथा, इंग्लैंड के उद्योगपति एवं पूँजीपति भी अधिक लाभ कमाने के लिए अपना अतिरिक्त धन भारत में रेलों, सड़कों, नहरों के निर्माण, चाय व कॉफी के बागों तथा कोयले की खानों में लगाते थे। इस धन का ब्याज तथा लाभ भी इंग्लैंड को जाता था। इन सभी कारणों से भारतीय धन अथवा संपदा इंग्लैंड जाती रही और भारत में धन संपत्ति का निरंतर अभाव होता रहा और समय बीतने के साथ भारत, जो 'सोने की चिड़िया' कहलाता था, निर्धन देश बन कर रह गया।

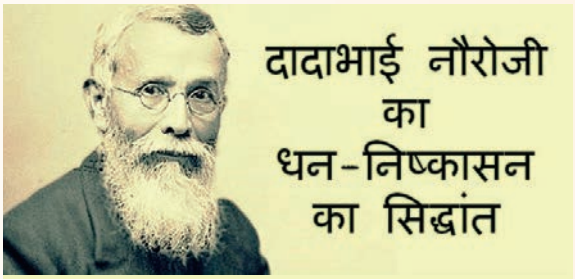

चित्र 3. सबसे पहले दादाभाई नौरोजी ने धन के निष्कासन से सम्बंधित अपनी किताब पावर्टी एंड अन-ब्रिटिश रूल एन इंडियामें अपने विचारों को रखा।

चित्र 4. रमेशचंद्र दत्त भारत के प्रसिद्ध प्रशासक, आर्थिक इतिहासज्ञ, लेखक तथा रामायण व महाभारत के अनुवादक थे। भारतीय राष्ट्रवाद के पुरोधाओं में से एक रमेश चंद्र दत्त का आर्थिक विचारों के इतिहास में प्रमुख स्थान है। पुस्तक: इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया

ग) हस्तशिल्प उद्योगों का पतन : औद्योगिक क्रांति के कारण इंग्लैंड में बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो गए। इनमें बड़ी मात्रा में उत्पादन होने लगा और यह माल सुंदर तथा सस्ता होता था। अत: भारतीय माल जो लघु उद्योगों द्वारा निर्मित होता था, उनके सामने नहीं टिक सका और भारतीयों को अपना माल कम कीमत पर बेचने के लिए विवश होना पड़ा। परिणामस्वरूप धीरे-धीरे भारतीय लघु उद्योग बंद होने आरंभ हो गए। दूसरा, भारतीय लघु उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुएँ जब इंग्लैंड तथा यूरोप के बाजारों में पहुँचती थी तो उन पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगा दिए जाते थे ताकि वहाँ के लोग उन्हें खरीद न सके। इस कारण भारतीय लघु उद्योगों को गहरी क्षति पहुँची,

जिससे भारतीय दस्तकार और शिल्पकार बर्बाद हो गए। तीसरा, भारतीय दस्तकारों तथा शिल्पकारों द्वारा निर्मित वस्तुओं के बड़े खरीददार भारतीय शासक तथा राजदरबार थे परंतु अंग्रेजों ने उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सभी देशी राज्यो का अंत कर दिया जिससे उनके मुख्य ग्राहक समाप्त हो गए। परिणामस्वरूप भारतीय लघु उद्योग पूर्ण रूप से नष्ट हो गए तथा उनमें काम करने वाले दस्तकार और शिल्पकार बर्बाद हो गए।

घ) उद्योगों का पिछड़ापन : इंग्लैंड की सरकार ने भारत में औद्योगिक विकास के लिए कोई ठोस कार्य नहीं किए। भारी धातु एवं बड़ी मशीनें बनाने वाले उद्योगों को, जिन पर अन्य उद्योगों का विकास निर्भर था, जानबूझकर प्रोत्साहित नहीं किया क्योंकि इंग्लैंड की सरकार भारत में भारतीय उद्योगपतियों की अपेक्षा ब्रिटिश उद्योगपतियों के हितों का अधिक ध्यान रखती थी। भारत में लगाई गई बहुत-सी प्रारंभिक मिलों एवं कारखानों के मालिक भी अंग्रेज थे और भारतीय ब्रिटिश सरकार अंग्रेज उद्योगपतियों की हर संभव सहायता करती थी। परिणामस्वरूप विदेशी पूँजी का भारतीय पूँजी पर दबाव बना रहा। भारत में इंग्लैंड के उद्योगों में निर्मित वस्तुएँ ही बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाई जाती थी उदाहरण के लिए भारत में रेल लाइन बिछाने के लिए रेल की पटरियाँ, रेल के डिब्बे तथा अन्य सामान इंग्लैंड से ही आता था। साम्राज्यवादी नीतियों के कारण ही देश में औद्योगिक विकास असंतोषजनक रहा।

ड) निर्यात की अपेक्षा आयात को बढ़ावा देना : भारत में अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत से सूती कपड़े, रेशमी कपड़े, गरम मसाले, नील, चाय आदि का बड़ी मात्रा में निर्यात होता था। यूरोपीय बाजारों में इन वस्तुओं की बहुत अधिक मांग थी परंतु भारत में अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् अंग्रेजों ने भारत में इस प्रकार की नीति अपनाई जिससे भारत में आने वाले ब्रिटिश माल पर नाममात्र का आयात शुल्क लगाया जाता था। वहीं इंग्लैंड में भारतीय दस्तकारों द्वारा तैयार किए गए कपड़े तथा अन्य वस्तुओं पर भी भारी शुल्क तथा प्रतिबंध लगाया जाता था ताकि यूरोप के लोग इन भारतीय वस्तुओं को न खरीद सकें। परिणामस्वरूप भारतीय कपड़े तथा अन्य वस्तुओं का निर्यात धीरे-धीरे समाप्त हो गया परंतु भारत में इंग्लैंड के उद्योगों में तैयार माल का आयात बढ़ता गया। इंग्लैंड की आयात निर्यात नीति के कारण भारतीय उद्योग तथा कारखाने बंद होने लगे।

च) भारतीय कृषि एवं किसानों पर दुष्प्रभाव : भारत पर इंग्लैंड के अधिकार का भारतीय कृषि पर बड़ा विनाशकारी प्रभाव पड़ा। भारत की ब्रिटिश सरकार ने किसानों से लगान एकत्र करने के लिए जितने भी भूमि प्रबंध लागू किये, वे सब किसानों के शोषण पर आधारित थे। किसानों की लगभग आधी उपज लगान चुकाने में लग जाती थी। कर इकट्ठा करने के नियम इतने कठोर थे कि किसानों को हर हाल में, चाहे उपज हो या न हो, कर देना पड़ता था। वे अपनी भूमि बचाने के लिए महाजनों से ऊँचे ब्याज पर पैसा उधार लेते थे और महाजनों के चंगुल में फंसे रहते थे, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने भूमि सुधार की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। परिणामस्वरूप बहुत-सी भूमि बंजर हो गई जिससे बेचारे किसान दरिद्र हो गए और साथ ही उपज कम होने से

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

देश में बार-बार अकाल पड़ने लगे।

छ) पश्चिमी शिक्षा लागू होना : अंग्रेजों ने भारत में 1835 ई. में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली लागू की जिससे अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम मान लिया गया। परंतु अंग्रेजों द्वारा लागू की गई शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य भारतीयों का मानसिक और नैतिक विकास करना नहीं था अपितु कुछ भारतीयों की ऐसी श्रेणी उत्पन्न करना था जो अंग्रेजी भाषा की शिक्षा प्राप्त करके क्लर्कों इत्यादि छोटे पदों पर थोड़े वेतनों पर कार्य करें। भारत में स्थापित किए गए विश्वविद्यालयों का उद्देश्य भी भारतीयों को उच्च स्तर की शिक्षा देना नहीं था। स्त्री शिक्षा, उच्च शिक्षा, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा की पूर्ण अवहेलना की जिससे भारतीय विश्व के अन्य देशों के नागरिकों की अपेक्षा पिछड़ गए। कुछ उच्च एवं मध्य वर्गीय भारतीयों ने पश्चिमी देशों में शिक्षा प्राप्त करके भारत के ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आवाज उठाई, लेकिन पश्चिमी शिक्षा ने भारत की सभ्यता व संस्कृति को गहरा आघात पहुँचाया।

ज) ईसाई धर्म का प्रसार : भारत में अंग्रेजों के आगमन के साथ ही ईसाई धर्म प्रचारक भी बड़ी संख्या में भारत में आ गए। ये पादरी बड़े उत्साह से ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। ईसाई धर्म प्रचारक विद्यालयों, महाविद्यालयों, अस्पतालों, दफ्तरों, मंदिरों, मस्जिदों तथा जेलों आदि में जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करते थे। इस काम के लिए उन्हें ब्रिटिश भारतीय सरकार का पूर्ण सहयोग प्राप्त था। उन्होंने लोगों को ईसाई धर्म में मिलाने के लिए प्रत्येक उचित तथा अनुचित ढंग अपनाया। वे भारतीय धर्मों तथा परंपराओं की निंदा करते थे। सेना में भी ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए ईसाई पादरी रखे गये थे। ईसाई धर्म अपनाने वाले लोगों को कई प्रकार की सुविधाएँ तथा प्रलोभन दिए जाते थे। ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रयासों के परिणामस्वरूप बहुत अधिक संख्या में भारतीय ईसाई बन गए जिससे प्राचीन भारतीय संस्कृति को बहुत बड़ा आघात पहुँचा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आधुनिक युग का साम्राज्यवाद प्राचीन साम्राज्यवाद से भिन्न था। यह प्राचीन साम्राज्यवाद की तरह सैनिक अथवा राजनीतिक साम्राज्यवाद नहीं था। यह साम्राज्यवाद नव साम्राज्यवाद अथवा नव उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता है। इसे आर्थिक साम्राज्यवाद कहना भी उचित होगा। इसके साथ-साथ इसमें सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की झलक भी थी। इस साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद से एशिया व अफ्रीका के धन सम्पदा से परिपूर्ण राष्ट्रों का अधिकाधिक आर्थिक शोषण व दोहन हुआ। जिससे ये राष्ट्र निर्धन होते चले गये तथा यूरोप के राष्ट्र समृद्ध व धनी हो गये। एशिया व अफ्रीका के देशों के दोहन का प्रभाव आज भी इन महाद्वीपों के देशों पर नजर आता है। ये तीसरी दुनिया के देश अभी भी गरीबी व भुखमरी से लड़ रहे हैं। यह गरीबी, दरिद्रता व भुखमरी उपनिवेशवाद की विरासत है। उपनिवेशवाद व साम्राज्यवाद ने भारत जैसे सांस्कृतिक

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

रूप से समृद्ध राष्ट्र की जड़ों को भी खोखला कर दिया तथा आपसी फूट व तनाव के बीज बोकर इस विशाल राज्य को दो भागों मे विभाजित कर दिया। वर्तमान में भी आर्थिक व सांस्कृतिक साम्राज्यवाद की विचारधारा थोड़ा भिन्न रूप में लगातार चल रही है।

आओ जानें

1. साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का अर्थ व साम्राज्यवाद के प्रसार में कौन-कौन सी परिस्थितयाँ सहायक रही?
2. भारत के सन्दर्भ में इंग्लैंड व फ्रांस के उपनिवेशिक विकास के बारे में लिखें।
3. अफ्रीका में साम्राज्यवाद के विकास में किन-किन देशों ने भाग लिया, इनके बारे में लिखे?
4. साम्राज्यवाद में यूरोप, एशिया, अफ्रीका के देशों पर सकारात्मक व विनाशकारी प्रभावों का उल्लेख करें।

आइए विचार करें

1. साम्राज्यवाद व उपनिवेशवाद में अंतर स्पष्ट करें।
2. साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने शोषण के कौन-कौन से तरीके अपनाये?
3. भारतीय कृषि और किसानों पर उपनिवेशवादी व्यवस्था के क्या दुष्परिणाम रहे, स्पष्ट करें?
4. भारतीय धन अथवा सम्पदा का निष्कासन से आप क्या समझते हैं?

आओ करके देखें

1. मानचित्र पर साम्राज्यवादी देशों द्वारा भारत में जो बस्तियां स्थापित की गई उनकी स्थिति को दर्शाओ।
2. शिक्षक की सहायता से कक्षा में चर्चा करो कि अगर हमारा देश उपनिवेश नहीं रहा होता तो आज हमारा राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन कैसा होता।
3. आज के भारत में कौन-कौन से औपनिवेशिक चिह्न नजर आते हैं?

© BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

अध्याय - 8

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन

सोने की चिड़िया कहा जाने वाला भारत विश्व का एक समृद्ध देश था जिस पर विदेशियों की गिद्ध दृष्टि हमेशा लगी रहती थी। इसकी समृद्धि से लालायित होकर विदेशी यहाँ आए। इन्हीं विदेशियों में अंग्रेज भी थे। 1600 ई. में ब्रिटेन के लालची व्यापारियों ने संयुक्त रूप से एक कंपनी (ईस्ट इंडिया कंपनी) बनाकर भारत से व्यापार की शुरुआत की। अठारहवीं सदी में भारत की राजनीतिक अस्थिरता का फायदा उठाकर ये लालची व्यापारी राजनीतिक सत्ता में परिवर्तित हो गए। राजनीतिक सत्ता बनने पर भी कंपनी का लालच कम नहीं हुआ बल्कि यह दिन प्रतिदिन बढ़ता गया तथा कंपनी ने गाँव-शहर, अमीर-गरीब, जमींदार-किसान, राजा-प्रजा, हिंदू-मुस्लिम, व्यापारी-कारीगर सब का समान रूप से शोषण करना शुरू कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद भारत के जिस भी हिस्से में पहुँचा उसी हिस्से में उसके खिलाफ संघर्ष, विद्रोह और आंदोलन शुरू हो गए। वनवासी, संन्यासी, राजा, प्रजा, कारीगर, किसान सभी अंग्रेजी शासन व उनकी शोषणकारी नीतियों से परेशान थे। अंग्रेजों के ईसाई मत के प्रचार तथा भारतीय धर्म व संस्कृति में अनावश्यक हस्तक्षेप से भी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध गहरा असंतोष उत्पन्न हुआ। इसी असंतोष के परिणामस्वरूप भारतीयों में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध कई जन आंदोलन खड़े हुए जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है :

1857 ई. से पूर्व का साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष

1757 ई. में प्लासी व 1764-65 ई. में बक्सर के युद्ध जीतने के पश्चात् अंग्रेज व्यापारिक सत्ता से राजनीतिक सत्ता बन गए। इसके बाद निरंतर अंग्रेजी साम्राज्यवाद का विस्तार हुआ, परन्तु भारत में एक भी वर्ष तथा एक भी क्षेत्र ऐसा नहीं था जहाँ अंग्रेजी सत्ता एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद का घोर विरोध न हुआ हो। 1757 ई. से 1857 ई. के बीच लगभग सैकड़ों विद्रोह हुए। 1763 ई.-1800 ई. के बीच 'वंदे मातरम' का रणनाद् करते हुए संन्यासियों ने ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया। इस संघर्ष के बाद तो अपनी मातृभूमि को आक्रांताओं से मुक्त कराने के लिए आदिवासियों (संथाल, कोल, खासी, चुआर, अहोम), बुनकरों, कारीगरों, किसानों, देशी राजाओं ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध लंबा एवं सतत् संघर्ष किया, जिसकी चरम परिणति 1857 ई. के महान राष्ट्रीय संघर्ष में हुई।

1857 ई. का महान स्वतंत्रता संघर्ष

अंग्रेजी कंपनी की शोषणकारी भू-राजस्व नीतियों से किसान की हालत दयनीय हो गई। वहीं हस्तशिल्प उद्योगों के पतन से हस्तशिल्पी भी विनाश के कगार पर आ गए। वेलेजली, हेस्टिंग्ज व डलहौजी की साम्राज्यवादी नीतियों के कारणों से देशी शासकों की रियासतें छिन जाने से राजाओं और प्रजा में बेचैनी बढ़ने लगी। सेना में

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

सैनिकों से भेदभाव किए जाने से उनमें रोष पनपने लगा। ईसाई मत के प्रचार से तथा भारतीय धर्म व संस्कृति का उपहास करने से भारतीय जनमानस आहत् हुआ। धन की निकासी से भारत कसमसाने लगा। इन सबके फलस्वरूप जीवित एवं स्वयं स्फूर्त राष्ट्र ने अंगड़ाई ली तथा 1857 में अंग्रेजी सत्ता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए सभी वर्गों, धर्मों, क्षेत्रों, रंगों, जातियों के लोगों ने मिलकर योजनाबद्ध ढंग से संगठित होकर एक वर्ष तक लगातार अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। यद्यपि भारत को आजादी नहीं मिली फिर भी इस संघर्ष ने अंग्रेजी शासन की नींव हिला दी, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों ने भारत में 'फूट डालो और राज करो' की नई नीति अपनाकर भारतीयों को आपस में बांट कर अगले 90 वर्ष तक अपने शासन व शोषण को बनाए रखा। भारतीयों ने भी 1857 ई. के महान क्रांतिकारियों मंगल पांडे, रानी लक्ष्मीबाई, तांत्या टोपे, नाना साहिब, राव तुलाराम, कुंवर सिंह, राजा नाहर सिंह से प्रेरणा लेकर राष्ट्रीय संघर्ष को जारी रखा तथा विदेशी शासन को चैन की साँस नहीं लेने दी।

1857 ई.-1900 ई. के बीच का संघर्ष

1857 की महान राष्ट्रीय क्रांति की असफलता के बावजूद स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं थमी अपितु यह और जोरदार रूप में आरंभ हो गई। 1857 ई. से 1900 ई. के बीच पुनः भी वनवासियों, किसानों, धार्मिक संतों एवं शिल्पकारों ने संघर्ष जारी रखा व कई आंदोलन किए गए। इनमें 1859 ई.-1861 ई. का नील विरोध, 1869 ई.-1872 ई. का कूका आंदोलन, 1899 ई.-1900 ई. का बिरसा मुंडा का विरोध प्रमुख थे। इन तीनों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

क) 1859 ई. - 60 ई. का नील विरोध : नील की यूरोप में विशेष मांग थी, इसलिए लालची ब्रिटिश व्यापारियों व जमींदारों ने बंगाल में किसानों व उनके परिवारों पर घोर अत्याचार और उनसे जबरन नील की खेती करवाई गई, जिससे त्रस्त होकर बंगाल के गाँव के किसान एकजुट हो गए तथा उन्होंने नीलहो (अंग्रेजी जमींदारों) के विरुद्ध जोरदार संघर्ष का बिगुल बजा दिया। जिसे नील विद्रोह भी कहा जाता है। उस समय के एक जर्मन पादरी ने लिखा कि गाँव के किसानों ने अलग-अलग समूह जैसे तीर-धनुष वालों का समूह, ढेले मारने वालों का समूह, ईंट वालों का समूह, बेल वालों का समूह, थाली वालों का समूह, बल्लमधारियों का समूह इत्यादि बनाए तथा नीलहे जमींदारों के लठैतों का जमकर मुकाबला किया। इन किसानों का कोई नेता नहीं था फिर भी इन्होंने अंग्रेजी जमींदारों के अत्याचारों का मिलकर मुकाबला किया। हर गाँव के बाहर एक नगाड़ा और डुगडुगी होती थी। नीलहों के लठैत गाँव में आते तो यह नगाड़ा और डुगडुगी बजाकर ग्रामवासी व आसपास के गाँव वाले इकट्ठा हो जाते थे। नील विद्रोह की भयंकरता का अंदाजा लॉर्ड कैनिंग के शब्दों से लगाया जा सकता है 'नील के किसानों के वर्तमान विद्रोह के बारे में प्रायः एक सप्ताह तक मुझे इतनी चिंता रही, जितनी दिल्ली की घटना (1857 के महान संग्राम) के समय भी नहीं हुई थी।' अंततः नील के विद्रोह को सफलता मिली तथा नील की खेती बंद हो गई।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

जानने का प्रयास करें, कि नील विद्रोह का मूल कारण क्या था?

ख) कूका आंदोलन (1869 ई. - 72 ई.) : उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पंजाब में गुरु गोविंद सिंह जैसे आदर्श राजनीतिक शासन की स्थापना के प्रयास बालक सिंह नामक उदासी फकीर के शिष्य रामसिंह कूका के नेतृत्व में हुआ। रामसिंह एक साधारण परिवार से संबंध रखने वाले व्यक्ति थे। उनके द्वारा स्थापित संप्रदाय कूका अथवा नामधारी सिक्ख संप्रदाय कहलाया। इस संप्रदाय के लोग जोर-जोर से कूक मारकर गाते थे इसलिए इनका नाम कूका पड़ा। इनके शिष्यों की संख्या तेजी से बढ़ी। रामसिंह ने खालसा को पुनर्जीवित करके अंग्रेजी साम्राज्यवाद को जड़ से उखाड़ फेंकने का निश्चय किया। उन्होंने सारे पंजाब को 22 हिस्सों में बांट कर अलग-अलग अधिकारी नियुक्त किए। उनके शिष्य रात को तैयार होते, इकट्ठे होते, साधारण वेशभूषा व सीधी पग बांधते, रस्सी गले में बांधते तथा लाठी लेकर चलते। गौ-हत्या के विरुद्ध उन्होंने जबरदस्त अभियान चलाया। पंजाब के तीर्थ स्थलों के आसपास मौजूद बूचड़खानों को नष्ट करने में उन्होंने मुख्य भूमिका निभाई। कूकों का पहला संघर्ष अंग्रेजों से 1869 ई. में फिरोजपुर में हुआ। इसका उद्देश्य अंग्रेजी सत्ता को उखाड़ फेंकना था। 1872 ई. में कूका आंदोलन मलोध, पटियाला और कोटला में भी फैल गया। इसे दबाने का कार्य लुधियाना डिप्टी कमिश्नर कोदान को दिया गया। 68 कूका आंदोलनकारियों को गिरफ्तार किया गया जिसमें 65 पुरुष, 2 महिलाएँ व एक 12 वर्षीय बालक था। कोदान ने 49 कूकों को तोप से उड़ा दिया तथा बाकी को अदालत में मुकद्दमा चलाकर मृत्युदंड दे दिया। शहीदों में बिशन सिंह, बरियाम सिंह के किस्से प्रसिद्ध हैं। राम सिंह को गिरफ्तार करके रंगून भेज दिया गया। वहीं 1885 ई. में उनकी मृत्यु हो गई। राम सिंह कूका ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद को उखाड़ने का प्रयास किया कूकाओं ने सर्वप्रथम स्वदेशी कपड़े, खासकर गाढ़ा या खद्दर पहनकर स्वदेशी वस्तुओं के व्यापार एवं विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर उसे राष्ट्रीय अस्त्र के रूप में इस्तेमाल किया, जिसका भविष्य में राष्ट्रवादियों ने इस्तेमाल करके भारतीय जनमानस में चेतना व जागरूकता उत्पन्न की। महात्मा गांधी ने इसी अस्त्र का व्यापक स्तर पर प्रयोग कर आम जनमानस को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ा।

ग) बिरसा मुंडा का विरोध : जब अंग्रेजी साम्राज्यवाद ने वनवासी क्षेत्रों में घुसपैठ की तो भारत के वीर वनवासियों ने अपने परंपरागत हथियारों से उनका सामना किया। मुंडा विरोध का नेतृत्व बिरसा ने किया। बिरसा रांची जिले के छोटे से गाँव चलकद के मुंडा थे। प्रारंभ में वे इसाई बने तथा उन्होंने ईसाई मिशनरी स्कूल में कुछ शिक्षा भी ग्रहण की लेकिन ईसाई धर्म से असंतुष्ट होकर वो पुनः मुंडा बन गए। अंग्रेजी साम्राज्यवाद के शोषण एवं ईसाईयत के प्रचार के विरुद्ध मुंडा सरदारों ने विरोध का बिगुल बजाया। मुंडा सामूहिक खेती करते थे लेकिन अंग्रेजी शासन से यह परंपरा टूट गई जिससे मुंडा वनवासियों में असंतोष पनपा। मुंडा नेता बिरसा ने स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित किया तथा 1899 ई. में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष का बिगुल बजा दिया। रांची एवं सिंहभूमि क्षेत्र में शीघ्र ही यह संघर्ष फैल गया। मुंडा अक्सर गुप्त रूप से महारानी विक्टोरिया के पुतले

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

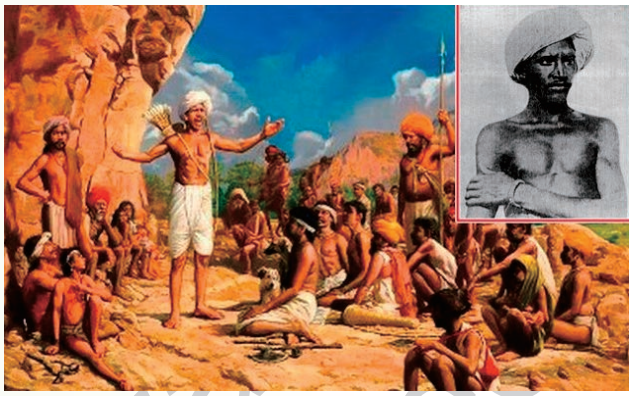

चित्र 1. बिरसा मुंडा

बनाकर उन पर तीर-धनुष का अभ्यास करते थे तथा ब्रिटिश राज के स्थान पर मुंडाराज स्थापित करना चाहते थे। उन्होंने कई स्थानों पर आक्रमण किए जिससे ब्रिटिश सरकार तमतमा गई तथा बिरसा को ढूंढने लगी। 3 फरवरी 1900 ई. को बिरसा को गिरफ्तार कर लिया गया तथा उन्हें रांची जेल में रखा गया। बिरसा व उनके 482 साथियों पर मुकद्दमा चलाया गया। 9 जून 1900 ई. को हैजे से जेल में ही बिरसा की मृत्यु हो गई। बिरसा मुंडा के तीन साथियों को मृत्युदंड, 44 को काला पानी और 47 को कारावास की सजा दी गई। मुकद्दमे में बिरसा की पत्नी मनकी को भी डिप्टी कमिश्नर पर आक्रमण के लिए 2 वर्ष की सजा सुनाई गई। संघर्ष कुचल दिया गया लेकिन बिरसा अमर हो गए। कई समाचार पत्रों में मुंडा के पक्ष में लेख छपे। सुरेंद्र नाथ बनर्जी ने कलकत्ता के प्रमुख समाचार पत्रों में बिरसा मुंडा व उनके समर्थकों के समर्थन में लेख लिखे।

राष्ट्रवादियों के संघर्ष एवं आंदोलन

उन्नीसवीं सदी में भारतीय धर्म एवं समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए कई समाज धर्म सुधार आंदोलन चले जैसे ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन, बहिष्कृत हितकारिणी सभा, सिंह सभा इत्यादि। इन आंदोलनों से भारतीयों में आत्मसम्मान, स्वाभिमान, आत्म गौरव एवं आत्मबलिदान की भावनाएँ उत्पन्न हुईं तथा अपने राष्ट्र, धर्म एवं संस्कृति के प्रति गर्व की भावना ने जन्म लिया जिससे साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष और मुखर होने लगा। इसके फलस्वरूप लाल, बाल, पाल जैसे जुझारू राष्ट्रवादियों ने संपूर्ण भारत में राष्ट्रीयता, देश प्रेम एवं स्वराज्य की एक विशाल लहर उत्पन्न की। इसमें लाल, बाल, पाल व अरविंद घोष ने मुख्य भूमिका निभाई। बंकिम चंद्र चटर्जी के द्वारा रचित उपन्यास 'आनंदमठ' में 'वंदे मातरम' का वह गीत रचा गया जिसने लाखों-करोड़ों भारतीयों में राष्ट्रीयता एवं स्वराज की भावना को जन्म दिया तथा उनमें क्रांतिकारी विचारों एवं संघर्षों का बीज बोया। महर्षि 'अरविंद घोष' ने भारत को 'जीता जागता सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक राष्ट्र' कहा । बंगाल में क्रांति की भावना का जन्म इन्हीं के प्रयासों से हुआ। राष्ट्रवादियों के संघर्ष एवं आंदोलनों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

गतिविधि : जानने का प्रयास करें कि राष्ट्रवादी आंदोलन का प्रसार करने के लिए किन प्रतीकों का इस्तेमाल किया?

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

अ) बाल गंगाधर तिलक : बाल गंगाधर तिलक एक निडर, साहसी, एक ऐसे नेता व पत्रकार थे जिनकी भाषा सरल, स्पष्ट एवं सीधी चोट करने वाली थी। उन्होंने 1881 ई में मराठी भाषा में 'केसरी' और अंग्रेजी भाषा में 'मराठा' नामक अखबारों का संपादन शुरू करके भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता एवं स्वराज्य की भावनाएँ उत्पन्न करनी शुरू कर दी। उन्होंने गणेश उत्सव (1893 ई.) एवं शिवाजी उत्सवों (1896 ई.) का राजनीतिक इस्तेमाल कर गीतों, भाषणों व अन्य तरीकों से लोगों में राष्ट्रीयता का प्रचार किया। 1896 ई. में उन्होंने ही विदेशी वस्तुओं की होली जलाकर विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के कूका आंदोलन के अस्त्र का व्यापक प्रयोग शुरू किया। 27 जून 1898 ई. को चापेकर बंधुओं ने पूना के प्लेग कमिश्नर रैंड की हत्या कर दी। रैंड की हत्या को लेकर तिलक पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने ये साजिश की तथा तिलक द्वारा अपने भाषण में शिवाजी द्वारा अफजल की हत्या का गुणगान करने को ही रैंड की हत्या के लिए प्रेरक बताया गया तथा उन पर राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया। अदालत ने उन्हें 18 महीनें की सजा दी। भारतीय अखबारों ने इसकी कड़ी आलोचना की तथा रातों रात तिलक सारे भारत में जनप्रिय हो गए और उन्हें 'लोकमान्य' की उपाधि दी गई। 18 महीनों की सजा के बाद तिलक को जेल से रिहा कर दिया गया तथा पुनः 1908 ई. में उन पर राजद्रोह का मुकद्दमा लगाकर 6 वर्ष की सजा दे दी गई।

ब) बंग-भंग एवं स्वदेशी व बहिष्कार आंदोलन : स्वदेशी व बहिष्कार के प्रमुख अस्त्रों का प्रयोग भारतीय राजनीति में सर्वप्रथम रामसिंह कूका ने किया था परंतु इन दोनों अस्त्रों का विशाल स्तर पर प्रयोग बाल गंगाधर तिलक ने किया। साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन ने 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाते हुए भारत की एक चौथाई आबादी के प्रदेश बंगाल को साम्प्रदायिकता के आधार पर पूर्वी व पश्चिमी बंगाल रूपी दो प्रांतों में बांट दिया जिसका उदारपंथियों व धार्मिक राष्ट्रवादियों ने जोरदार विरोध किया। स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन का प्रारंभ हुआ। बंगाल में इस आंदोलन का नेतृत्व राष्ट्रवादी विपिन चंद्र पाल कर रहे थे तथा पंजाब में लाला लाजपत राय व अजीत सिंह ने इसे लोकप्रिय बनाया। राष्ट्रवादी स्वदेशी व बहिष्कार को पूरे देश में फैलाना चाहते थे। वे इसे राजनीतिक जनसंघर्ष का रूप देना चाहते थे। विभाजन की मांग अब छोटा मुद्दा थी, अब लक्ष्य था स्वराज्य। तिलक ने नारा लगाया 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लेकर रहूंगा।' लेकिन नरमपंथी इसके लिए तैयार नहीं थे जिसकी वजह से नरमपंथियों व गरमपंथियों में गहरे मतभेद हुए तथा 1907 ई. में सूरत में फूट पड़ गई। गरमपंथी स्वदेशी व बहिष्कार आंदोलन को केवल विदेशी कपड़े के ही बहिष्कार नहीं अपितु सरकारी विद्यालयों, अदालतों, नौकरियों,

चित्र 2. लाल, बाल, पाल।

©BSEH. Bhiwani Not to be Reprinted

उपाधियों के बहिष्कार को भी इसमें शामिल करना चाहते थे तथा सरकारी संस्थानों के स्थान पर राष्ट्रीय संस्थानों, अंग्रेजी शिक्षा के स्थान पर राष्ट्रीय शिक्षा, सरकारी अदालतों के स्थान पर देशी पंचायतों के स्तर पर लेकर जाना चाहते थे। उन्होंने आत्मनिर्भरता एवं आत्म शक्ति का नारा दिया। अंततः ब्रिटिश सरकार झुकी तथा विभाजन को रद्द कर दिया गया। राष्ट्रीयता के वेग से घबराकर अंग्रेजों ने सांप्रदायिकता का जहर, मुस्लिम लीग की स्थापना एवं 'मिंटो मार्ले एक्ट' के माध्यम से फैलाने का निर्णय लिया।

स) होमरूल आंदोलन : संघर्षशील लोकमान्य तिलक छह वर्ष की सजा (मांडले) काटकर 1914 ई. में भारत पहुँचे तब प्रथम विश्वयुद्ध (1914-1918 ई.) शुरू हो चुका था। तिलक ने अनुभव किया भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन निराशा में घिरा हुआ है। उन्होंने इसमें पुनः उत्साह व जोश भरने का संकल्प लिया तथा होमरूल लीग का गठन करके एनी बेसेंट से मिलकर 'होमरूल आंदोलन' चलाया। शीघ्र ही 'होमरूल आंदोलन' महाराष्ट्र, कर्नाटक, मध्य भारत, मद्रास, मुंबई, उत्तर भारत में तेजी से फैल गया। काफी गिरफ्तारियाँ दी गईं। होमरूल आंदोलन ने युवाओं को अपने साथ जोड़ा तथा राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार बड़े शहरों से छोटे कस्बों और कहीं-कहीं तो गाँव तक भी किया। होमरूल आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही कि इसने भावी राष्ट्रीय आंदोलन के लिए जुझारू योद्धाओं का एक विशाल संगठन तैयार किया। विश्वयुद्ध की समाप्ति तक आजादी की लड़ाई की एक ऐसी पीढ़ी तैयार हो गई जिसने भविष्य में राष्ट्रीय संघर्ष को जुझारू एवं संघर्षशील बनाया। तिलक को वी. शैरोल ने 'भारतीय अशांति का जनक' करार दिया। वास्तव में तिलक ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को व्यापक एवं जुझारू बनाया तथा देश में आत्म सम्मान एवं आत्म गौरव की भावना को प्रबल किया।

क्रांतिकारी आंदोलन (1894 ई.-1947 ई.)

विवेकानंद, दयानंद के विचारों से प्रभावित होकर तथा तिलक व अरविंद घोष से प्रेरणा लेकर भारत में क्रांतिकारी आंदोलन का जन्म हुआ तथा अंग्रेजों को भारत से खदेड़ने के लिए ये क्रांतिकारी जान की बाजी लगाने में विश्वास रखते थे। आत्म बलिदान व आत्म त्याग इनकी रग-रग में था। बम, हत्याएँ, गोलाबारी के द्वारा अंग्रेजों को आतंकित करके भारत की पूर्ण स्वतंत्रता इनका लक्ष्य था। क्रांतिकारी गतिविधियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है

1. चापेकर बंधुओं द्वारा क्रांतिकारी घटना : 1897 ई. में पूना में प्लेग फैल गया। प्लेग से निपटने के लिए रैंड नामक अंग्रेज को प्लेग कमिश्नर नियुक्त किया गया। इस अंग्रेज ने पूना में लोगों के घरों तथा मंदिरों में बेरोकटोक प्रवेश कर आम जनता में असंतोष उत्पन्न कर दिया। दो भाई दामोदर चापेकर व बालकृष्ण चापेकर ने 22 जून को बदनाम रैंड की गोली मारकर हत्या कर दी। उसके साथ आयर्स्ट भी मारा गया। क्रांतिकारी संभवतः तिलक से प्रभावित थे, दोनों को पकड़कर मृत्युदंड दिया गया। तिलक को भी भड़काऊ भाषण व लेख लिखने के अपराध स्वरूप 18 महीने की सजा मिली।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

2. महाराष्ट्र में क्रांतिकारी घटनाएँ : विनायक दामोदर सावरकर ने महाराष्ट्र में क्रांतिकारियों को संगठित करने के लिए यूरोप जाने से पूर्व ही मित्र मेला व अभिनव भारत जैसी संस्थाओं का निर्माण किया। इन संस्थाओं के माध्यम से कई क्रांतिकारी उत्पन्न हुए। 1909ई.-1910ई. में अभिनव भारत ने नासिक, अहमदाबाद, और सतारा में क्रांतिकारी घटनाओं को अंजाम दिया।

3. बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन : बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन के जन्मदाता अरविंद घोष व बारिंद्र घोष थे। घोष बंधुओं ने विभिन्न क्रांतिकारियों को प्रेरित किया तथा यहाँ 'अनुशीलन समिति' नामक संगठन का निर्माण हुआ तथा संध्या, युगांतर जैसी पत्रिकाओं व भवानी मंदिर जैसी पुस्तकों से क्रांतिकारी आंदोलनों को बल मिला। 1908 ई. में खुदीराम बोस व प्रफुल्ल चाकी ने मुजफ्फरपुर के न्यायाधीश किंग्सफोर्ड को मारने के उद्देश्य से उसकी बग्गी पर बम फेंका जिसमें 2 महिलाओं की मृत्यु हुई। चाकी ने आत्महत्या कर ली, खुदीराम बोस को मृत्युदंड दिया गया। अरविंद घोष व बारिंद्र घोष पर अलीपुर षड्यंत्र केस में मुकद्दमा चला।

4. श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा विनायक दामोदर सावरकर : श्यामजी कृष्ण वर्मा पश्चिमी भारत के काठियावाड़ के निवासी थे। उन्होंने कैंब्रिज विश्वविद्यालय से बैरिस्ट्री की शिक्षा ग्रहण की। 1905 ई. में वर्मा जी ने 'भारत स्वशासन समिति' का गठन किया जिसे प्राय: इंडिया हाउस कहा जाता था। उन्होंने एक समाचार पत्र 'इंडियन सोशलॉजिस्ट' शुरू किया तथा भारतीयों के लिए 1000-1000 रुपए की छह फैलोशिप भी शुरू की जिसकी वजह से शीघ्र ही इंडिया हाउस भारतीय क्रांतिकारियों का केंद्र बन गया। 1906 ई. में इस फैलोशिप का लाभ उठाकर फर्ग्यूसन के नव स्नातक विनायक दामोदर सावरकर भी लंदन पहुँच गए। 1904 ई. में वीर सावरकर ने 'अभिनव भारत' नामक गुप्त संस्था की स्थापना की। शीघ्र ही पूरे महाराष्ट्र में गुप्त समितियों का जाल बिछ गया। इसके अतिरिक्त पूना, मुंबई, नासिक आदि स्थानों पर बम बनाने की फैक्ट्रियाँ स्थापित की गई। वीर सावरकर के बड़े भाई गणेश सावरकर भी बड़े देशभक्त थे। उन्हें सजा दिलवाने में नासिक के डिप्टी कलेक्टर मिस्टर जैक्सन तथा भारत सचिव के मुख्य परामर्शदाता कर्जन वाइली का बड़ा हाथ था। इसलिए जुलाई 1909 ई. में अमृतसर के एक नवयुवक 'मदन लाल ढींगरा' ने कर्जन वाइली को गोली मार दी। बाद में 16 अगस्त 1909 ई. को मदन लाल ढींगरा को फांसी की सजा दी गई।

चित्र 3. भारत सरकार द्वारा श्यामजी कृष्ण वर्मा पर जारी डाक टिकट

गतिविधि : जानने का प्रयास करें कि देश को स्वतंत्र कराने में क्रांतिकारियों ने किन साधनों का प्रयोग किया था?

©BSEH Bhiwani Not to be Reprinted

5. गदर आंदोलन : उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में भारत से कई भारतीय धन कमाने के लिए व जीविका के साधन ढूंढते हुए अमेरिका, बर्मा, सिंगापुर, हांगकांग, कनाडा आदि जा पहुँचे। अमेरिका में ज्वाला सिंह, बसारण सिंह, सोहन सिंह भकना, केसर सिंह आदि ने खूब धन कमाया परंतु भारतीय होने के नाते विदेश में भी इनके साथ अपमानजनक व्यवहार किया जाता था। इसलिए अपने देशवासियों की पीड़ा को अनुभव करते हुए उन्होंने यह निश्चय किया कि वह यहाँ विदेश में रहकर अपने भारतवर्ष को अंग्रेजों के चंगुल से मुक्त करवाने का प्रयास करेंगे। इसलिए उन्होंने क्रांतिकारी आंदोलन चलाने का निश्चय किया। सर्वप्रथम 1913 ई. में अमेरिका व कनाडा के भारतीयों को संगठित करके एक 'हिंदुस्तानी एसोसिएशन' बना ली जिसे 'गदर पार्टी' कहा जाता था। गदर पार्टी के पहले अध्यक्ष सोहन सिंह भकाना व सचिव लाला हरदयाल बने। इस पार्टी का मुख्य उद्देश्य हर संभव प्रयास व गतिविधि के द्वारा ब्रिटिश शासन की भारत से समाप्ति था। इस पार्टी का मुख्यालय युगांतर आश्रम नामक स्थान पर था। धीरे-धीरे इसकी शाखाएँ विभिन्न भागों में खुल गई। नवंबर 1913 ई. में 'गदर' नामक एक साप्ताहिक समाचार पत्र निकाला गया जो हिंदी, मराठी, अंग्रेजी, उर्दू आदि विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होने लगा। इस समाचार पत्र में ब्रिटिश शासन की वास्तविक तस्वीर भारतीयों के सामने पेश की गई तथा साथ ही नवयुवकों को क्रांतिकारी गतिविधियों में शामिल होने का आह्वान किया गया। मार्च 1914 ई. में लाला हरदयाल को गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया। इसलिए वह अमेरिका छोड़कर स्विट्जरलैंड चले गए। उसके पश्चात् भगवान सिंह, करतार सिंह सराभा, रामचंद्र आदि नेताओं ने अपने प्रयासों से गदर आंदोलन जारी रहा।

6. कामागाटामारू घटना : गदर पार्टी के सदस्यों ने भारत में हथियारों की क्रांति लाने के उद्देश्य से क्रांतिकारियों को जर्मन शस्त्रों के साथ तोसामारु नामक जहाज में भारत भेजा परंतु इसकी सूचना भारत में ब्रिटिश सरकार को पहले ही हो गई इसलिए भारत पहुँचने पर सभी व्यक्तियों को कैदी बनाकर कठोर मृत्युदंड दिए गए। इसी समय कनाडा की सरकार ने भारतीयों पर अनेक अनुचित प्रतिबंध लगा रखे थे इसलिए इन भारतीयों के सहयोग के लिए सिंगापुर के एक धनी भारतीय बाबा गुरुदत्त सिंह ने कामागाटामारू जहाज में 350 भारतीयों को लेकर कनाडा के लिए प्रस्थान किया। 23 मई 1914 ई. को जब यह जहाज कनाडा की बंदरगाह बैंकूवर पहुँचा तो कनाडा की सरकार ने इन्हें यहाँ उतरने की अनुमति नहीं दी। तत्पश्चात् यह जहाज भारत के लिए रवाना हो गया परंतु जब ब्रिटिश सरकार को इसका पता चला तो कलकत्ता पहुँचते ही सरकार ने बलपूर्वक इन यात्रियों को पंजाब में भेजने का प्रयास किया। कुछ यात्रियों ने बलपूर्वक कलकत्ता में प्रवेश करने की कोशिश की तो सरकार ने उन पर गोली चला दी। कामागाटामारू के निर्दोष व्यक्तियों पर गोली चलाए जाने के कारण भारतीयों में ब्रिटिश शासन के प्रति काफी रोष उत्पन्न हुआ।

7. काकोरी की घटना : 1919 ई. के जलियांवाला बाग हत्याकांड एवं असहयोग आंदोलन के स्थगन के बाद भारत के क्रांतिकारी संगठित होना शुरू हुए। इनके नेता थे राम प्रसाद बिस्मिल, योगेश चंद्र चटर्जी, शचींद्र नाथ सान्याल, चन्द्रशेखर आजाद व सुरेश चंद्र भट्टाचार्य। अक्टूबर 1924 ई. में इन क्रांतिकारी युवकों का कानपुर में

© BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

एक सम्मेलन हुआ और "हिंदुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन" का गठन किया गया। इसका उद्देश्य सशस्त्र क्रांति के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता को उखाड़ फेंकना था। संघर्ष करने, प्रचार करने, नौजवानों को अपने दल में मिलाने, प्रशिक्षित करने और हथियार जुटाने के लिए धन की जरूरत थी। इस उद्देश्य के लिए इस संगठन के 10 व्यक्तियों ने पंडित राम प्रसाद बिस्मिल के नेतृत्व में 9 अगस्त 1925 ई. को लखनऊ के पास एक गांव काकोरी में ट्रेन को रोक कर खज़ाना लूट लिया। सरकार इस घटना से बहुत कुपित हुई व भारी संख्या में युवकों को गिरफ्तार किया गया। उन पर मुकद्दमा चलाया गया। पंडित राम प्रसाद बिस्मिल, रोशन सिंह, राजेंद्र लाहड़ी व अशफाक उल्ला खां को फांसी की सजा दी गई। चार को आजीवन कारावास देकर अंडमान भेज दिया। 17 अन्य लोगों को लंबी सजाएँ सुनाई गई।

8. साइमन कमीशन का विरोध : 1928 ई. में सात सदस्यों (सभी अंग्रेज) वाला एक कमीशन आया, जिसके प्रधान सर जॉन साइमन थे। इस कमीशन का सम्पूर्ण भारत मे विरोध हुआ 'साइमन वापस जाओ' के नारों से सारा भारत गूँज उठा। 30 अक्टूबर 1928 ई. को लाहौर में साइमन कमीशन का विरोध करते हुये लाला लाजपत राय पर बर्बर लाठीचार्ज से उनकी मौत हो गई । राजगुरु व भगत सिंह ने सांडर्स को गोली मारकर मौत के घाट उतार दिया तथा लाला लाजपत राय की मौत का बदला लिया ।

चित्र 4. साइमन कमीशन का बहिष्कार

9. भगत सिंह, राजगुरु व सुखदेव की शहादत : जय गोपाल के मुख़बिर बनने से सांडर्स हत्याकांड में भगत सिंह की संलिप्तता का केस शुरू हुआ। इसे 'लाहौर षड्यंत्र' केस कहते हैं। इसके बाद उन्हें लाहौर पेश किया गया। कुल मिलाकर 16 क्रांतिकारियों के विरुद्ध मुकद्दमा चलाया गया। जनता मे ये लोकप्रिय हो गये। जो अब तक क्रांतिकारियों की निंदा करते थे, अब वे भी प्रशंसा करने लगे।

10 जुलाई 1929 ई. को सांडर्स हत्याकांड का मुकद्दमा चला। 24 क्रांतिकारियों पर अभियोग चलाया गया। 6 फरार थे, 3 को छोड़ दिया गया था, 7 सरकारी गवाह बन गए, शेष 8 पर मुकद्दमा चला। यह मुकद्दमा मजिस्ट्रेट के पास से हटाकर 3 जजों के एक ट्रिब्यूनल के सामने गया। 7 अक्टूबर 1930 ई. को स्पेशल ट्रिब्यूनल ने भगत सिंह व उसके साथियों को मौत की सजा सुना दी। फांसी की सजा रोकने के लिए पूरे देश में प्रदर्शन हुए। 23 मार्च 1931 ई. को शाम 7:00 बजे इन तीनों को फांसी लगा दी गई। जनता के विरोध के डर से सतलुज के किनारे इनका अंतिम संस्कार कर दिया गया। चंद्रशेखर आजाद ने क्रांतिकारी गतिविधियाँ जारी रखी। पुलिस ने उनके साथियों को पकड़ लिया पर उनकी ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध लड़ाई जारी रही। बाद मे इलाहाबाद के

©BSEH, Bhiwani Not to be printed

अल्फ्रेड पार्क में लड़ते हुए वह भी वीरगति को प्राप्त हुए।

10. आजाद हिंद फौज : 1938 ई. में कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए सुभाष चंद्र बोस 1939 ई. में भी गांधी जी के उम्मीदवार के विरुद्ध कांग्रेस अध्यक्ष चुने गए। बाद में वे देश छोड़ पेशावर, मास्को से बर्लिन जा पहुँचे, जहाँ हिटलर के दाहिने हाथ रिवनट्रॉप ने उनका स्वागत किया गया। सुभाष चंद्र बोस ने रास बिहारी बोस से मिलकर 'आजाद हिंद फौज' का पुनर्गठन किया नेताजी ने 'दिल्ली चलो' का नारा दिया। फौज ने अराकान, कोहिमा व इम्फाल में संघर्ष किया इसी दौरान एक बड़ी घटना घटी। 18 अगस्त, 1945 ई. को एक हवाई जहाज दुर्घटना में माना जाता है कि सुभाष चंद्र बोस की मृत्यु हो गई, यद्यपि उनकी मौत की पुष्टि अभी तक भी नहीं हो पाई है।

The Hindustan Times

I.N.A. TRIAL OPENS IN RED FORT

SHAH NAWAZ — DHILLON — SAHGAL — DEFENCE COUNSEL

CHARGES OF MURDER AND WAGING WAR AGAINST KING

Syria A Potential Trouble Spot In Mid-East

चित्र 5. आजाद हिंद फौज के अधिकारियों पर चले मुकद्दमे से संबंधित समाचार प्रकाशन

आजाद हिंद फौज एक संगठन के रूप में अद्वितीय थी। सुभाष चंद्र बोस व उनकी आजाद हिंद फौज के विलक्षण कार्यों का भारतीय जनता पर अत्यंत गहरा प्रभाव पड़ा। ब्रिटिश सरकार ने आजाद हिंद फौज के कुछ अफसरों के विरुद्ध विश्वासघात के आरोप में मुकद्दमा चलाने की घोषणा की तो विरोध की लहर सारे देश में फैल गई। सारे देश में विशाल प्रदर्शन हुए। अधिकारियों को रिहा करने की निरंतर मांग की गई। सरदार गुरबख्श सिंह ढिल्लों, प्रेम सहगल और शाहनवाज के ऊपर ब्रिटिश शासन ने राजद्रोह का मुकदमा चलाया तो संपूर्ण राष्ट्र में आन्दोलन भड़क उठे। कोर्ट मार्शल का मुकद्दमा लाल किले पर चलाया गया था। उनकी रिहाई की जोरदार आवाज लगभग सभी दलों ने उठाई। 'दिल्ली चलो' का नारा, 'राष्ट्रीय गान' के साथ-साथ 'जय हिंद' सारे देश में लोकप्रिय हो गए। ब्रिटिश हुकूमत को एहसास हो चुका था कि यदि भारत का सशस्त्र दमन करने की चेष्टा की गई तो अब भारतीय जवान उनका साथ न देकर बगावत कर देंगे।

11. शाही नौसेना का संघर्ष : आजाद हिंद फौज के आंदोलन का प्रभाव राष्ट्रीय आंदोलन पर तथा सेना पर भी पड़ा। सन 1946 ई. में सेना में अशांति व शाही नौसेना का संघर्ष अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाएं थी, जिन्होंने ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी। जनवरी 1946 ई. में हवाई सैनिकों ने मुंबई में हड़ताल की। उनकी मांगे थी कि हवाई सेना में अंग्रेजों और भारतीयों में भेदभाव को दूर किया जाए। भारतीयों में चेतना आ चुकी थी और वे हर क्षेत्र में बराबरी की मांग करते जा रहे थे। इसके बाद नौसेना का संघर्ष हुआ। दूसरे महायुद्ध से पहले भारतीय समुद्र तट की रक्षा करने वाले जंगी जहाजों को ब्रिटिश नौसेना से अलग करके रॉयल इंडियन नेवी का गठन हुआ था। इसके नाविक छोटे अफसर भारतीय थे लेकिन अधिकांश बड़े अफसर अंग्रेज थे। नौसेना के भारतीय सैनिकों को वे सैनिक सुविधाएँ नहीं दी जाती थीं जो ब्रिटिश नौसैनिकों को दी जाती थीं। फरवरी 1946 ई. में 'तलवार' नामक जहाज पर सैनिकों ने आंदोलन कर दिया। इनके नारे थे 'जय हिंद', 'इंकलाब जिंदाबाद',

'हिंदू-मुस्लिम एक हो', 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद मुर्दाबाद', 'ब्रिटिश साम्राज्यवाद का नाश हो'। अब ब्रिटिश साम्राज्य सुरक्षित नहीं रह गया था। इस प्रकार आजाद हिंद फौज व नौसेना के आंदोलन ने देश की आजादी में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

अहिंसावादी आन्दोलन

गांधी जी के द्वारा देश के राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर संभालना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जिसके दूरगामी परिणाम निकले। वे 1915 ई. में दक्षिण अफ्रीका से वापस आए और शीघ्र ही भारतीय राजनीति में सक्रिय हो गए। गांधी जी ने 1947 ई. तक भारत के अहिंसावादी आंदोलन का नेतृत्व किया। प्रथम विश्व युद्ध के बाद रोलट एक्ट, जलियांवाला बाग नरसंहार जैसी परिस्थितियों में गांधी ने असहयोग आंदोलन चलाया। उन्होंने भारत सरकार के सभी मेडल व पुरस्कार लौटा दिए जो उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध में सरकार की सहायता करके प्राप्त किए थे। उन्होंने सरकार द्वारा दी गई केसर-ए-हिंद की उपाधि भी वापस कर दी। इनका अनुसरण करते हुए सैकड़ों देशभक्तों ने अपनी उपाधियाँ व पदवियों को छोड़ दिया। लाला लाजपत राय, सी. आर. दास, मोतीलाल नेहरू, वल्लभ भाई पटेल और राजेंद्र प्रसाद जैसे प्रसिद्ध वकीलों ने अपनी वकालत छोड़ दी। बहुत से छात्रों ने सरकारी स्कूलों को छोड़ दिया और वे राष्ट्रीय स्कूलों में भर्ती हो गए। कार्यक्रम के अनुसार विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया गया, विदेशी कपड़े के स्थान पर खादी को अपनाया गया और चरखे का प्रचलन बढ़ गया। सरकार ने इस आंदोलन को दबाने के लिए दमन-चक्र का सहारा लिया। बड़े-बड़े नेताओं को बंदी बना लिया गया। लोगों पर तरह-तरह के अत्याचार किए गए। कुछ ही महीनों में कैद किए हुए लोगों की संख्या तीस हजार के पार हो गई। सरकार ने इस आंदोलन को जितना दबाया, यह आंदोलन उतना ही जोर पकड़ता चला गया। 5 फरवरी 1922 ई. को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी-चौरा के स्थान पर लोगों की उत्तेजित भीड़ ने एक पुलिस चौकी को आग लगा दी जिसमें एक थानेदार और 21 सिपाही जल कर मर गए। महात्मा गांधी ने इस घटना से दु:खी होकर असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया, लेकिन इस आंदोलन ने भारतीयों मे चेतना उत्पन्न की।

1929 ई. में रावी के तट पर एक ऐतिहासिक अधिवेशन मे गांधी जी ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव रखा तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' चलाने का निर्णय लिया गया आंदोलन शुरू करने से पहले गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार के समक्ष अपनी 11 मांगों को रखा और कहा यदि सरकार इन मांगों को मान लेती है तो हम आंदोलन शुरू करने का निर्णय वापस ले लेंगे। परंतु वायसराय लार्ड इर्विन ने इन मांगों के प्रति कोई उत्तर नहीं दिया। इसलिए 12 मार्च 1930 ई. को गांधी जी ने ऐतिहासिक सविनय अवज्ञा आंदोलन का आरम्भ दांडी यात्रा से किया। आरंभ में गांधी जी के साथ 78 अनुयायियों ने भाग लिया, परंतु धीरे-धीरे मार्ग में सैकड़ों लोगों ने उन्हें अपना समर्थन दिया। 24 दिन के पश्चात् 6 अप्रैल 1930 ई. को गांधी जी ने दांडी पहुँचकर समुद्र के पानी से नमक तैयार करके सविनय अवज्ञा आंदोलन आरम्भ किया। यह आंदोलन बहुत शीघ्र ही सारे

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

देश में फैल गया। जनता ने इसके प्रति बहुत उत्साह दिखाया। प्रत्येक संभव स्थान पर नमक बनाया गया व अन्य कानूनों का उल्लंघन किया गया। ब्रिटिश सरकार को मजबूर होकर 05 मार्च 1931 ई. को 'गांधी इर्विन समझौता' करना पड़ा । समझौते के अनुसार गांधी जी दूसरे गोलमेज सम्मेलन मे भाग लेने के लिए लंदन गए तथा निराश होकर आंदोलन पुनः आरंभ करने की घोषणा कर दी। सरकार ने कांग्रेसी नेताओं को गिरफ्तार करके कांग्रेस को 'गैर कानूनी संस्था' घोषित कर दिया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मैकडोनाल्ड ने राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने के लिये 16 अगस्त, 1932 ई. को 'सांप्रदायिक निर्णय' की घोषणा कर दी, जिसका मुख्य उद्देश्य हरिजनों व शेष हिंदुओं को अलग करना था। देश के प्रत्येक हिस्से में इस निर्णय की आलोचना की गई। गांधी जी ने आमरण अनशन करके इसे विफल कर दिया।

ब्रिटिश सरकार के व्यवहार से तंग आकर कांग्रेस ने 8 अगस्त 1942 ई. को बंबई अधिवेशन में भारत छोड़ो आंदोलन का प्रस्ताव पास किया। भारत छोड़ो आंदोलन के प्रस्ताव के पास होने के अगले दिन ही कांग्रेस के मुख्य नेताओं जैसे गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, अबुल कलाम आजाद, राजेंद्र प्रसाद, पट्टाभिसीतारमैया आदि नेताओं को बंदी बना लिया गया। इस राष्ट्रव्यापी आंदोलन में वकीलों, अध्यापकों, व्यापारियों, डाक्टरों, पत्रकारों, मजदूरों, विद्यार्थियों व स्त्रियों ने भी बढ़-चढ़ कर भाग लिया। विभिन्न नगरों में सभाएँ की गई एवं जुलूस निकाले गए। लगभग एक सप्ताह के लिए कामकाज पूरी तरह बंद रहा। कांग्रेस को एक बार फिर गैरकानूनी संस्था घोषित कर दिया गया।

अंग्रेजी सरकार ने आंदोलन को कुचलने के लिए दमन की नीति का सहारा लिया। सरकार ने शांतिपूर्ण जुलूसों पर गोलियाँ चलाई व लाठीचार्ज किया। सरकारी सूत्रों के अनुसार 538 अवसरों पर निहत्थे लोगों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाई। एक लाख से अधिक स्त्री-पुरुषों को बंदी बना लिया गया। प्रदर्शनकारियों पर भारी जुर्माने किए गए, देश में चारों और अराजकता और अशांति फैल गई। लोगों ने हिंसा का उत्तर हिंसा से दिया। कई सरकारी भवनों व पुलिस स्टेशनों को जला दिया गया, तार की लाइनें काट दी गईं। यद्यपि यह आंदोलन भारत से विदेशियों को निकालने तथा देश को स्वतंत्र कराने में असफल रहा तथापि यह आंदोलन जिसे 'अगस्त क्रांति' के नाम से जाना जाता है एक महान घटना थी। भारत में ब्रिटिश सरकार के इतिहास में ऐसा विप्लव कभी नहीं हुआ जैसा कि पिछले तीन वर्षों में हुआ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में साम्राज्यवादियों का विश्व के अन्य भागों की भांति स्वागत नहीं हुआ अपितु उनकी सत्ता की स्थापना के साथ ही उनका विरोध शुरू हो गया। प्रारम्भ में वनवासियों, कृषकों, जमींदारों, शिल्पकारों, देशी राजाओं ने उनके विरुद्ध संघर्ष किया बाद में शिक्षित भारतीयों ने भी अहिंसावादी व हिसांवादी दोनों तरीकों से अंग्रेजों के साम्राज्यवादी व उपनिवेशवाद आर्थिक शोषण व उनके सांस्कृतिक हस्तक्षेप का डटकर विरोध किया गया। इस विरोध में मुख्य भूमिका क्रांतिकारियों की रही जिन्होंने आत्म बलिदान से भारत को स्वतंत्रता दिलाने में मुख्य भूमिका निभाई ।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

1857 ई. से पूर्व के किसान व नागरिक संघर्ष

आंदोलन	नेता का नाम	वर्ष	क्षेत्र
कौल	बुद्धो भगत	1831	झारखंड
कूका	भगत जवाहर मल	1860	पंजाब
खोंड	चक्र बिसोई	1837	उड़ीसा
मुण्डा	बिरसा मुण्डा	1899–1900	झारखंड
संन्यासी	गिरी सम्प्रदाय	1770	बंगाल
पॉलीगरों	काट्टावाम्मन	1801	तमिलनाडु
भील	दशरथ	1820–25	राजस्थान
पागलपंथी	करमशाह व टीपू	1840–1850	तमिलनाडु
अहोम	गोमधर कुंवर	1828	असम
खासी	राजा तीरथ सिंह	1828–1833	असम

1857 का एक परिचय

केन्द्र	नेता
दिल्ली	बहादुर शाह, बख्त खाँ
लखनऊ	बेगम हजरत महल
इलाहाबाद	लियाकत अली
झाँसी, ग्वालियर	रानी लक्ष्मीबाई, तात्यां टोपे
कानपुर	नाना साहब
रेवाड़ी	राव तुलाराम
कासन गाँव	अलबेल सिंह, जियाराम
झज्जर	नबाब अब्दुल रहमान खाँ
बल्लभगढ़	राजा नाहर सिंह
पटना	पीरअली
जगदीशपुर	कुँवर सिंह, अमर सिंह
आरा	बंदे अली

फिर से याद करें

1. 1857 से पहले कौन-कौन से आंदोलन हुए थे?
2. 1857 की क्रांति किन कारणों से हुई थी?
3. क्रांतिकारियों की गतिविधियों के मुख्य केन्द्र कौन-कौन से थे?
4. आजाद हिन्द फौज की स्वतंत्रता आंदोलन की क्या भूमिका थी?
5. महात्मा गाँधी के आंदोलनों का वर्णन करें?

आइए विचार करें

1. बिरसा मुंडा के नेतृत्व में वनवासी आंदोलन किन कारणों से हुआ?
2. स्वतंत्रता आंदोलन में भगत सिंह, राजगुरु एवं सुखदेव का क्या योगदान था?
3. कामागाटामारू घटना क्यों हुई?
4. स्वतंत्रता आंदोलन में स्वदेशी व बहिष्कार क्यों महत्वपूर्ण थें?

आओ करके देखें

1. क्रांतिकारियों की गतिविधियों की सूची बनाएं।
2. सुभाष चन्द्र बोस के चित्रों को एकत्रित करकें कोलाज बनाएं।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

अध्याय - 9

स्वतंत्र भारत के 50 वर्ष

आओ जाने

- भारत कब और कैसे स्वतंत्र हुआ?
- भारत का विभाजन कैसे हुआ?
- राज्यों का पुनर्गठन कैसे हुआ?
- हरित क्रांति क्या थी?
- आपातकाल (1975 ई.-77 ई.) के क्या प्रभाव थे?
- शाहबानो मामला क्या था?
- भारत में 1991 ई. की उदारीकरण की प्रक्रिया कैसे प्रारम्भ हुई?
- भारत के पड़ोसी देशों के साथ किस प्रकार के संबंध रहे हैं?
- भारत के महाशक्तियों से किस प्रकार के संबंध रहे हैं?
- भारत का संयुक्त राष्ट्र में क्या योगदान रहा है?

भारत को 15 अगस्त, 1947 ई. को अंग्रेजों से स्वतंत्रता प्राप्त हुई। इस दिन के लिए भारतीयों को सैंकड़ों साल तक संघर्ष करना पड़ा था। भारत पर अंग्रेजों ने 190 वर्षों तक शासन किया। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए अनेक देशभक्तों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी।

भारत की स्वतंत्रता के साथ ही देश का साम्प्रदायिक विभाजन भी हुआ। यह अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' की नीति का परिणाम था। जिन्ना के 'द्वि-राष्ट्र सिद्धांत' के कारण देश के बटवारे की मांग जोर पकड़ती जा रही थी। लेकिन स्वतंत्रता के प्रयास में लगे बड़े-बड़े नेताओं द्वारा साम्प्रदायिकता को कम करके आँका गया। इसी कारण वे देश के विभाजन का अंदाजा नहीं लगा सके। अंत में यही साम्प्रदायिकता भारत के विभाजन का कारण बने। विभाजन के कारण उपजी परिस्थितियों के कारण देश को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा। परन्तु इन चुनौतियों और अन्य समस्याओं के बाद भी भारत ने बहुत सी उपलब्धियां प्राप्त की।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के पांच दशक के इतिहास का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है :

देश का विभाजन

भारत की स्वतंत्रता के साथ ही देश का दुखद विभाजन भी हुआ। देश का विभाजन होने के कारण उत्तर-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र, पश्चिमी पंजाब, सिंध, बलूचिस्तान और पूर्वी बंगाल को मिलाकर पाकिस्तान का निर्माण किया गया। भारत की तरफ से मुस्लिम आबादी का एक बड़ा हिस्सा नये बने पाकिस्तान में जाना था।

© Tiwari Not to be Reprinted

चित्र 1: लार्ड माउंटबेटन-नेहरू-जिन्ना के बीच विभाजन की चर्चा

चित्र 2: विस्थापितों से भरी रेलगाड़ी

वही पाकिस्तान के हिस्से में गए क्षेत्र से अधिकतर हिन्दुओं, सिक्खों व अन्य को भारत में आना था। दुनिया के इतिहास में, इतने कम समय में यह सबसे बड़ा विस्थापन था। यह विस्थापन मुख्यत: रेलगाड़ियों, सैनिक गाड़ियों व पैदल जत्थों द्वारा हुआ। हमारा वर्षों का शांतिपूर्ण साथ अब साम्प्रदायिक घृणा में बदल चुका था। इसलिए चारों तरफ हिंसा, आगजनी व बलात्कार की घटनाएँ हो रही थी। दोनों देशों से लाखों की संख्या में शरणार्थी आ रहे थे, जबकि उनके आंसू पौंछना और उन्हें बसाया जाना जरूरी था। अत: भारत में आने वाले लोगों को पहले अस्थाई शिविरों में ठहराया गया और फिर धीरे-धीरे उनके स्थाई पुनर्वास की व्यवस्था की गई।

गतिविधि : शिक्षक छात्रों को पाकिस्तान में शामिल क्षेत्र को कमरों और विद्यालय को भारत मानकर समझाएं।

देशी रियासतों का एकीकरण

भारतीय रियासतों पर ब्रिटिश सरकार का अधिकार 15 अगस्त, 1947 ई. को समाप्त हो गया था। लगभग 565 देशी रियासतें अब भारत या पाकिस्तान में सम्मिलित हो सकती थी या स्वतंत्र रह सकती थी। इस दौरान भारत सरकार के प्रथम गृह मंत्री ''लौह पुरुष'' सरदार वल्लभभाई पटेल थे। उन्होंने ऐसी परिस्थितियों में बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया। पटेल ने अधिकतर रियासतों को भारतीय संघ में शामिल होने के लिए सहमत कर लिया था। केवल हैदराबाद, जूनागढ़ व कश्मीर की रियासतें ही भारत में शामिल होनी बाकी थी। सरदार पटेल ने हैदराबाद व जूनागढ़ को वहाँ की जनता की राय के आधार पर

क्या आप जानते हैं?

भारतीय संसद द्वारा जम्मू-कश्मीर को धारा 370 के तहत मिला विशेष राज्य का दर्जा 31 अक्टूबर, 2019 ई. को समाप्त कर दिया गया है ।

भारतीय संघ में शामिल कर लिया। जम्मू-कश्मीर के शासक महाराजा हरि सिंह अपनी रियासत को स्वतंत्र रखना चाहते थे। परंतु 22 अक्टूबर 1947 ई. को पाकिस्तानी सेना तथा कबायलियों ने मिलकर जम्मू-कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान के आक्रमण से त्रस्त महाराजा हरि सिंह ने भारतीय संघ में विलय के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। अब भारतीय सेना ने मोर्चा सम्भालते हुए कश्मीर घाटी से आक्रान्ताओं को पीछे हटने पर विवश कर दिया। भारत द्वारा सयुंक्त राष्ट्र संघ की सुरक्षा परिषद् के समक्ष मामला ले जाने के बाद दोनों ओर से युद्ध विराम की घोषणा हुई। युद्धविराम के कारण कश्मीर का लगभग एक तिहाई भाग पाकिस्तान के पास रह गया। तत्कालीन परिस्थितियों में कश्मीर के लिए भारतीय संविधान में अस्थाई तौर पर धारा 370 जोड़ दी गई। इसके अंतर्गत जम्मू-कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।

संविधान का निर्माण

भारत का संविधान बनाने के लिए एक 'संविधान सभा' का गठन किया गया। संविधान सभा में कुल 389 सदस्य थे। इसकी पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 ई. को हुई। डा. राजेन्द्र प्रसाद ने बाद में इस संविधान सभा के स्थाई अध्यक्ष का कार्यभार सम्भाला। संविधान सभा द्वारा संविधान के निर्माण के लिये कुल 22 समितियों का गठन किया गया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक सात सदस्यीय प्रारूप समिति बनाई गयी। इस समिति को संविधान के प्रारूप को तैयार करने का कार्य दिया गया।

चित्र-3 :
डॉ. भीमराव अंबेडकर

संविधान

किसी भी देश का शासन चलाने के लिऐ नियम व कानूनों का दस्तावेज संविधान कहलाता है।

संविधान के निर्माण के लिये बहुत से देशों के संविधानों पर विधि विशेषज्ञों तथा बुद्धिजीवियों ने विचार विमर्श किया। आखिरकार 26 नवम्बर 1949 ई. को हमारा संविधान बनकर तैयार हो गया। इस संविधान को बनने में 2 साल, 11 महीने तथा 18 दिन लगे। इसे 26 जनवरी 1950 ई. को लागू किया गया। प्रत्येक वर्ष यह दिन भारत में 'गणतंत्र दिवस' के रूप मे मनाया जाता है। हमारे संविधान को बनाने का मूल आधार जनता की भावना थी। इस कारण संविधान की प्रस्तावना भारत को एक सार्वभौम, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष तथा जनतांत्रिक गणराज्य घोषित करती है।

देश के प्रथम चुनाव

भारत के पहले आम चुनाव 1951-52 ई. के दौरान हुए। इस चुनाव में लगभग 17 करोड़ 30 लाख मतदाताओं

©BSEH Bhiwani Not to be printed

ने भाग लिया। इस चुनाव में लोकसभा की कुल 489 सीटें थी तथा 14 राष्ट्रीय तथा 63 क्षेत्रीय व स्थानीय दलों ने चुनाव में भाग लिया। सम्भवत: यह विश्व में पहला चुनाव था जिसमें इतनी बड़ी संख्या में जनता ने सहभागिता की। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने इस चुनाव में भारी विजय प्राप्त की।

चित्र-4 : पहले आम चुनावों में भाग लेते मतदाता

राज्यों का पुनर्गठन

अंग्रेजों द्वारा भारत के शासन को अपनी सुविधा के अनुसार विभिन्न रियासतों में बांटा गया था। स्वतंत्रता के बाद इन रियासतों को भारतीय संघ में शामिल कर लिया गया था। अत: देश में भाषा व भौगोलिकता के आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की आवश्यकता थी। भारत सरकार द्वारा इसके लिये 1953 ई. में राज्य पुनर्गठन आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग का कार्य भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की सिफारिश करना था। आयोग की रिपोर्ट के आधार पर नवम्बर 1956 ई. में राज्य पुनर्गठन अधिनियम पास किया गया। इसके द्वारा देश में भाषा के आधार पर चौदह राज्यों व छह केन्द्र शासित प्रदेशों की व्यवस्था की गई। हिन्दी को भारत के कार्यालयों में प्रयोग की जाने वाली भाषा के रूप में मान्यता दी गयी। इसके साथ ही अंग्रेजी को बड़े स्तर पर सरकारी कार्यालयों में प्रयोग किया जाता रहा।

पुनर्गठन

यह एक ऐसी प्रक्रिया हैं जिसमे किसी व्यवस्था का दुबारा या फिर से गठन या पुनर्निर्माण किया जाता है।

फ्रांसीसी व पुर्तगाली क्षेत्रों की स्वतंत्रता

भारत की स्वतंत्रता के बाद भी कुछ क्षेत्रों पर फ्रांस व पुर्तगाल का अधिकार बना हुआ था। पांडिचेरी, माही, कालीकट, यानम, चन्द्रनगर जैसे स्थान फ्रांसीसियों के कब्जे में थे। फ्रांसीसी सरकार ने ये सभी क्षेत्र 1954 ई. में भारत को वापिस लौटा दिये। जबकि गोवा, दमन और दीव, दादरा और नगर हवेली जैसे स्थानों पर पुर्तगालियों का कब्जा था। पुर्तगाली इन क्षेत्रों को वापिस नहीं लौटाना चाहते थे। लेकिन अंतत: भारतीय सेना ने 1961 ई. में पुर्तगालियों को भारत से खदेड़ दिया।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के बहुत से देश विचारधारा के आधार पर दो विरोधी गुटों में बट गए। इन गुटों में से एक अमेरिका और दूसरा सोवियत संघ का गुट था। अमेरिका के नेतृत्व में बने गुट को 'पश्चिमी ब्लाक'

©BSEH, Bhiwani Not to be Republished

और सोवियत संघ के नेतृत्व में बने गुट को 'पूर्वी ब्लाक' कहा गया। आर्थिक-तकनीकी सहयोग प्राप्त करने के लिए भारत ने दोनों गुटों से समान मित्रता रखने का प्रयास किया। स्वतंत्र विदेश नीति संचालन की इच्छा के कारण भी भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई। भारत तृतीय विश्व के देशों की स्वतन्त्रता बनाये रखने का इच्छुक था। अत:भारत ने शुरू से ही इन दोनो गुटों से अलग रहने की नीति अपनाई। हमारी विदेश नीति 'किसी भी गुट में शामिल न होकर सही को सही और गलत को गलत' कहने पर आधारित रही है। भारत के लिये गुट-निरपेक्षता का आंदोलन वैश्विक शांति तथा विकासशील देशो का समाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास का प्रतीक रहा है।

हरित क्रांति

देश के विभाजन के साथ ही बहुत सी उपजाऊ भूमि पाकिस्तान के पास चली गई। 1960 ई. के दशक में भारत-चीन युद्ध, भारत-पाकिस्तान युद्ध और सूखे ने हमारी अर्थव्यवस्था को कमजोर कर दिया। इस कारण भारत में खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो गया। परिणामस्वरूप किसानों के लिये नई कृषि नीति की घोषणा की गई। इस नीति के तहत उत्तर भारत के पंजाब, हरियाणा व पश्चिमी उत्तर प्रदेश में सस्ते व उन्नत बीज, खाद व तकनीक के प्रयोग को प्रोत्साहन दिया गया। इस कृषि नीति के माध्यम से किसानों को बिजली, सिंचाई व सस्ते ऋण देने की व्यवस्था की गयी। परिणामस्वरूप 1970 ई. के दशक की शुरुआत तक आते-आते देश में गेहूँ, चावल व मक्का की खेती में अढाई गुणा तक वृद्धि हो गई। इस दौर में कृषि उत्पादन में हुई तीव्र वृद्धि को ही 'हरित क्रांति' कहा जाता है।

हरित क्रांति	यह कृषि उत्पादन से संबंधित है।
पीली क्रांति	यह तिलहन उत्पादन से संबंधित है।
नीली क्रांति	यह मत्स्य पालन से संबंधित है।
श्वेत क्रांति	यह दुग्ध उत्पादन से संबंधित है।

आपातकाल का दौर

आजादी के बाद 1975 ई. में भारत ने सबसे बड़े राजनीतिक संकट का अनुभव किया। 1971 ई. में चुनी गई इंदिरा गांधी की सरकार 'गरीबी हटाओ' के नारे के साथ सत्ता पर काबिज हुई थी। सरकार बनने के एक वर्ष के अंदर ही दिसम्बर 1971 ई. में भारत-पाक युद्ध व बांग्लादेश का निर्माण हुआ। इससे इंदिरा गांधी की लोकप्रियता में भी वृद्धि जरूर हुई। लेकिन अन्य मुद्दे जैसे- मंदी, बेरोजगारी, गरीबी, खाद्य पदार्थों की कमी, बांग्लादेशी शरणार्थियों की समस्या, सूखा तथा मानसून की असफलता से जनता में असंतोष बढ़ने लगा। राष्ट्रव्यापी

©RSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

हड़तालों व छात्र आंदोलनों के कारण देश में कानून व्यवस्था की स्थिति निरंतर बिगड़ती जा रही थी। इनमें से मुख्य तौर पर गुजरात और बिहार के छात्र-आंदोलनों से कानून व्यवस्था की स्थिति और भी चिंताजनक हो गई थी। इस कारण 1974 ई. तक आते-आते इंदिरा गांधी की सरकार से जनता का एक बड़ा हिस्सा नाराज हो चुका था। 12 जून 1975 ई. को इलाहबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गये फैसले में इंदिरा गांधी को चुनावों में अनुचित आचरण का दोषी करार दिया। इस फैसले के अनुसार अब वह किसी भी पद पर नहीं रह सकती थी। इस दौरान लोकनायक के नाम से प्रसिद्ध जयप्रकाश नारायण (जे. पी.), इंदिरा गाँधी की इन गलत नीतियो का खुलकर विरोध कर रहे थे। वे भ्रष्टाचार, महंगाई, गरीबी को लेकर सरकार के खिलाफ सत्याग्रह व अहिंसक आंदोलन कर रहे थे। उन्होंने देश में उपजे राजनीतिक संकट व न्यायालय के फैसले के आधार पर भी इंदिरा गाँधी पर अपने पद से त्यागपत्र देने का दबाव बनाया। जे. पी. ने राष्ट्रकवि दिनकर की पंक्तियों 'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।' को नारे का रूप दे दिया। इंदिरा गाँधी ने स्वयं को चारों ओर से घिरता देख, 25 जून 1975 ई. को अपनी सत्ता बचाने के लिये आपातकाल की घोषणा कर दी। आपातकाल लगने के तुरंत बाद प्रेस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। सरकार के विरुद्ध आंदोलन में शामिल जयप्रकाश नारायण व अन्य विपक्षी नेताओं जैसे मोरारजी देसाई, अटल बिहारी वाजपेयी, लालकृष्ण आडवाणी, चरण सिंह, चन्द्रशेखर तथा असंख्य छात्र नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर भी प्रतिबंध लगाकर उसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। आपातकाल के दौरान एक लाख से अधिक लोगों को गिरफ्तार किया गया। इस दौरान अनेक संवैधानिक संशोधनों द्वारा संसद को निष्प्रभावी बना दिया गया। जिन राज्यों में विपक्षी दलों की सरकारें थी, उनमें से अधिकांश को बर्खास्त कर दिया गया। परिवार नियोजन (नसबंदी) कार्यक्रम को भी सख्ती से लागू किया। हालाकि आपातकाल के दौरान हो रही ज्यादतियों का जनता ने तीव्र विरोध जारी रखा, जिसके फलस्वरूप तत्कालीन सरकार को 21 मार्च, 1977 ई. को आपातकाल समाप्त करने को मजबूर होना पड़ा। इसी साल देश में आम चुनाव हुए जिसमें गैर-कांग्रेसी दलों की पहली गठबंधन सरकार बनी।

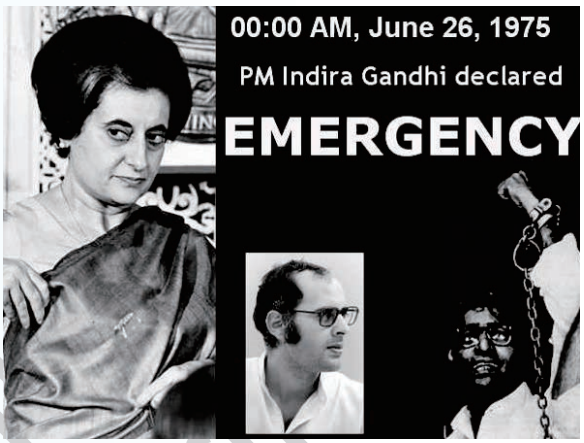

चित्र-5 : आपातकालीन की घोषणा, प्रभाव व विरोध ब्यान करती तस्वीर

आपातकाल

देश में आंतरिक व बाहरी संकट के कारण केंद्र व राज्य सरकारो की सारी शक्तियाँ राष्ट्रपति के हाथ में आ जाना ।

शाहबानो मामला

भारत में लंबे समय से मुस्लिम धर्म में किसी न किसी रूप में 'तीन तलाक' की प्रथा रही है। पांच बच्चों की माँ 62 वर्षीया शाहबानो नामक मुस्लिम महिला को उसके पति ने तीन तलाक दे दिया। पति द्वारा गुजारे भत्ते से इंकार किये जाने पर शाहबानो ने न्यायालय की शरण ली। यह फैसला शाहबानो के पक्ष में आया लेकिन गुजारा भत्ता बढ़वाने के लिए शाहबानो ने उच्च न्यायालय में याचिका डाली। उच्च न्यायालय ने गुजारा भत्ता बढ़ाने का आदेश दिया। परन्तु निर्णय के विरुद्ध उसके पूर्व पति ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। 1985 ई. में उच्चतम न्यायलय ने मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के आदेश को सही बताते हुए शाहबानो के पक्ष में फैसला दिया। न्यायालय द्वारा दिया गया यह फैसला मुस्लिम समाज, विशेषकर महिलाओं के लिए बड़ा प्रगतिशील कदम हो सकता था लेकिन इस फैसले का पुरातनपंथी मुस्लिम नेताओं तथा संगठनों द्वारा विरोध करते हुए सरकार पर दबाव बनाया गया। परिणामस्वरूप राजीव गांधी सरकार ने 1986 ई. में संसद में कानून बनाकर सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को पलट दिया।

चित्र-6 : शाहबानो की न्यायालय से जीत का चरित्र दिखाती तस्वीर

क्रियाकलाप

क्रियाकलाप-शाहबानो से जुड़े मामले में न्यायालय द्वारा हाल ही में जो निर्णय दिया गया है उस पर रिपोर्ट तैयार करें।

हालांकि, सरकार की इस 'तुष्टिकरण की नीति' का कई महिला संगठनों, मुस्लिम महिलाओं की जमातों तथा बहुत से बुद्धिजीवियों ने जोरदार विरोध किया। परंतु सरकार के दखल के कारण शाहबानो सर्वोच्च न्यायालय में जीतने के बाद भी हार गई।

आर्थिक नियोजन और विकास

1944 ई. में ही भारत में 8 बड़े उद्योगपतियों ने बॉम्बे प्लान के रूप में भूमि सुधार, सहकारी पद्धति, योजनागत विकास के लिए आर्थिक प्रयोजन प्रस्तुत किया। लेकिन, देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार द्वारा बड़े-बड़े सरकारी संस्थानों की स्थापना तथा समाजवाद के विस्तार पर बल दिया। इस दिशा में प्रधानमन्त्री नेहरू ने अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माण के लिये 15 मार्च 1950 ई. को सलाहकारी संस्था 'योजना आयोग' की स्थापना की। इसके बाद 6

आर्थिक नियोजन

यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें निर्धारित उद्देश्यों को एक निर्धारित सीमा में पूरा करने हेतु उपलब्ध संसाधनों का बेहतर उपयोग किया जाता है ।

©RBSE, Bhiwadi Not to be Republished

अगस्त, 1952 ई. को 'राष्ट्रीय विकास परिषद' की भी स्थापना की गई। इसका मुख्य कार्य योजना आयोग द्वारा दी गयी सलाहों तथा योजनाओं पर संशोधित दिशा-निर्देश देना था। तत्कालीन सोवियत संघ की पंचवर्षीय योजना से प्रभावित होकर भारत में भी पंचवर्षीय योजनायें लागू की गयी। मिश्रित अर्थव्यवस्था तथा कठोर सरकारी नियमन के कारण स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा का वातावरण विकसित नहीं हो पाया। समय-समय पर लागू की गयी आर्थिक-औद्योगिक नीतियाँ भी पर्याप्त सुधार नहीं कर पाई। उधर 1980 ई. के दशक में विभिन्न सरकारों द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियों के कारण 1991 ई. तक आते-आते भारतीय अर्थव्यस्था कमजोर हो चुकी थी। विदेशी ऋणों के भुगतान के लिए भारत को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक का दरवाजा खटखटाना पड़ा। इस आर्थिक संकट का सामना करने के लिए भारत को 47 टन सोना गिरवी रखना पड़ा। अतः भारत को 1991 ई. में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष व विश्व बैंक की शर्तों को मानते हुए अर्थव्यवस्था में आर्थिक सुधार करने पड़े। इसके बाद भी भारत द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीति अपनाते हुए विकास के पथ पर आगे बढ़ने का प्रयास जारी है।

भारत की वैज्ञानिक उन्नति

भारत को विकास के नए मार्ग पर ले जाने के लिए हमारे वैज्ञानिकों की अहम भूमिका रही है। 1951 ई. में भारत ने वैज्ञानिक अनुसंधान व प्राकृतिक संसाधनों से सम्बंधित मंत्रालय स्थापित कर दिया गया था। इसरो, बार्क एवं आई.आई.टी. जैसी संस्थाओं के अंतर्गत हुये अनुसंधान कार्यों के कारण भारत वैज्ञानिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ। होमी जहांगीर भाभा, विक्रम साराभाई, डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम, कस्तूरीरंगन इत्यादि वैज्ञानिकों के अथाह प्रयास से भारत पृथ्वी, नाग, अग्नि, आकाश, ब्रह्मोस इत्यादि मिसाइलों का निर्माण कर सका।

1974 ई. एवं 1998 ई. में भारत ने परमाणु परीक्षण कर स्वयं को परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र बनाया। भारत को विश्व में एक बड़ी सैनिक शक्ति बनाने के लिये हमारे वैज्ञानिकों की उल्लेखनीय भूमिका रही है। भारत के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम विश्व में 'मिसाइल मैन' के नाम से जाने जाते हैं। भारत ने आर्यभट्ट, भास्कर, रोहिणी इत्यादि सैटेलाइट भेजकर अंतरिक्ष तकनीक में नाम कमाया। आज भारत अन्य देशों के भी सैटेलाइट अन्तरिक्ष में भेजने में सक्षम है।

चित्र 7 : भारत की वैज्ञानिक उन्नति का चित्रण पेश करती तस्वीर।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

गतिविधि : बच्चे घर जाकर अपने माता-पिता से आस-पड़ोस के परिवारों से अपने सम्बंधों पर चर्चा करें।

भारत की विदेश नीति

किसी भी देश की विदेश नीति घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय कारकों पर आधारित होती है। घरेलू रूप से, इतिहास, संस्कृति, भूगोल और अर्थव्यवस्था ने भारत की विदेश नीति के उद्देश्यों और सिद्धांतों को निर्धारित किया है। अंतर्राष्ट्रीय कारक के रूप में क्षेत्रीय वातावरण, सीमा-विवाद तथा शीत युद्ध की विदेश नीति निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। भारतीय विदेश नीति के प्रमुख स्तंभ-पंचशील, गुट-निरपेक्षता, स्वतंत्र विदेश नीति संचालन, विकासशील देशों से एकजुटता, राष्ट्रीय तथा वैश्विक हित प्राप्ति के लक्ष्य आदि रहे हैं। पचास वर्षों के काल में भारत की विदेश नीति का अध्ययन तीन आधारों पर किया जाना आवश्यक है। ये हैं -

क) भारत के पड़ोसी देशों से सम्बन्ध

ख) महाशक्तियों से सम्बन्ध

ग) भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ।

क) भारत के पड़ोसी देशों से सम्बन्ध : भारत के सात पड़ोसी देश इस प्रकार हैं-उत्तर-पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर में चीन और नेपाल, उत्तर-पूर्व में भूटान और बांग्लादेश, पूर्व में म्यांमार और दक्षिण में श्रीलंका है। चीन और पाकिस्तान को छोड़कर अन्य देशों से भारत के सम्बन्ध अधिकतर सुखद रहे हैं।

पाकिस्तान से सम्बन्ध : भारत और पाकिस्तान के बीच ऐतिहासिक समानता, सांस्कृतिक एकरूपता, भौगोलिक निकटता व आर्थिक समरूपता के अवसर मौजूद हैं । लेकिन आज भी भारत-पाकिस्तान सम्बंध स्पर्धा, तनाव, संघर्ष और युद्ध के दायरे से बाहर नहीं निकल पाए हैं। पाकिस्तान ने 1947 ई., 1965 ई., 1971 ई. और 1999 ई. में भारत पर आक्रमण किया परन्तु भारत की वीर सेनाओं से पराजित हुआ। हताश पाकिस्तान द्वारा भारत में पंजाब तथा जम्मू-कश्मीर में परोक्ष आतंकवाद को निरंतर प्रोत्साहित किया जा रहा है ।

चीन से सम्बन्ध : चीन भारत का बड़ा पड़ोसी देश है जो कि विश्व राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का इच्छुक है। भारत पहला गैर-साम्यवादी देश था जिसने 1 जनवरी 1950 ई. को साम्यवादी चीन को मान्यता दी। प्रधानमन्त्री नेहरू ने सुरक्षा परिषद् में साम्यवादी चीन को स्थाई स्थान दिलाने के लिये कई बार प्रयास किए। विस्तारवादी प्रवृति के चीन ने 20 अक्टूबर 1962 ई. को भारत पर ही भयानक आक्रमण कर दिया। भारत को

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

इस युद्ध में जान-माल की भारी क्षति उठानी पड़ी। परंतु साम्यवादी चीन ने एकतरफा युद्धविराम की घोषणा कर दी। इस युद्ध से भारत की अंतर्राष्ट्रीय ख्याति व आत्मसम्मान को गहरी चोट पहुँची। तब से लेकर आज तक भारत-चीन सम्बन्ध तनाव और अविश्वास पर आधारित रहे हैं।

क्या आप जानते है?

चीन के साथ 1962 ई. में भारी क्षति उठाने वाली भारतीय सेना ने ब्रिटिश काल में सारागढ़ी तथा हाईफा की लड़ाइयों में अद्‌भुत वीरता एवं अदम्य साहस का परिचय दिया था।

नेपाल तथा भूटान से सम्बन्ध : भारत और नेपाल के मध्य बड़े लम्बे समय से गहरे सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक सम्बन्ध रहे हैं। दोनों के मध्य खुली सीमा विश्वास का प्रतीक रही है। इसी प्रकार हिमालय स्थित अन्य देश भूटान से भी भारत के घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। 1949 ई. की संधि ने दोनों देशों के मध्य चिरस्थायी मित्रता स्थापित कर दी। इन दोनों देशों से भारत के भावनात्मक सम्बन्ध हिन्दू तथा बौद्ध धर्म के कारण जुड़ाव से भी हैं। भूटान और नेपाल की भौगोलिक स्थिति भारतीय सुरक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

श्रीलंका से सम्बन्ध : श्रीलंका हिंद महासागर स्थित निकटतम पड़ोसी देश है। भारत व श्रीलंका के मध्य ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सम्पर्क रहे हैं। स्वतन्त्रता के बाद दोनों देशों के बीच श्रीलंका स्थित तमिलों को लेकर मतभेद रहे। 1987 ई. में भारत द्वारा शान्ति सेना भेजे जाने से तनाव अवश्य बढ़ गया था, लेकिन इसे वैमनस्य की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। दोनों देशों के बीच कुछ मतभेदों के बावजूद सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण रहे हैं।

बांग्लादेश से सम्बन्ध : बांग्लादेश को 1947 ई. से 1971 ई. तक पूर्वी पाकिस्तान कहा जाता था। 6 दिसम्बर 1971 ई. को बांग्लादेश को मान्यता देने वाला भारत पहला देश था। पश्चिमी पाकिस्तान के उत्पीड़न के शिकार बांग्लादेश के जन्म में भारत की विशेष भूमिका थी। भाषा और सांस्कृतिक जुड़ाव के कारण प्रारम्भ से ही दोनों देशों के मध्य घनिष्ठ मित्रता व परस्पर सहयोग का वातावरण रहा। हालांकि सैनिक शासकों के शासनकाल तथा बढ़ती धार्मिक कट्टरता के कारण सम्बन्धों में तनाव की स्थिति रही है। भारत हमेशा से ही बांग्लादेश को तकनीक, विज्ञान तथा उद्योग आदि क्षेत्रों में सहयोग करता रहा है।

म्यांमार अथवा बर्मा से सम्बन्ध : म्यांमार या बर्मा को आधिकारिक रूप से म्यांमार गणराज्य के रूप में जाना जाता है। भौगोलिक स्थिति के कारण इसे दक्षिण पूर्व एशिया का प्रवेश द्वार भी कहा जाता है। भारत और म्यांमार की 1600 कि.मी. से भी अधिक सीमाएं आपस में लगती हैं। म्यांमार के अधिकतर लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं और इस दृष्टि से भारत-म्यांमार में सांस्कृतिक निकटता है। पड़ोसी देश होने के कारण भारत के लिए म्यांमार का आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और रणनीतिक महत्व भी है। कुछ-एक अपवादों को छोड़कर

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

भारत–म्यांमार के सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहे हैं।

ख) महाशक्तियों से सम्बन्ध : विश्व में दो देशों, अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ को महाशक्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत ने स्वतंत्रता के पश्चात दोनों महाशक्तियों से समान दूरी अथवा समान रूप से मित्रता की नीति अपनाई। स्वतन्त्रता के बाद जहाँ एक ओर नेहरू जी का समाजवादी विचारधारा की ओर झुकाव बढ़ा वहीं दूसरी ओर पाकिस्तान की अमेरिका से निकटता बढने लगी। इसके कारण भारत का झुकाव सोवियत संघ की ओर होने लगा। पाकिस्तान और चीन से अमेरिका के सम्बन्ध बेहतर होने से भारत–अमेरिका सम्बन्ध दुष्प्रभावित हुए। 1971 ई. में भारत–सोवियत मैत्री संधि से दोनों देशों में मित्रता और अधिक मजबूत हुई। वहीं इस निकटता के कारण भारत और अमेरिका के मध्य दूरियां बढ़ती चली गयी। 1991 ई. में सोवियत संघ का विघटन हुआ और रूस उसके उत्तराधिकारी के रूप में सामने आया। इससे विश्व एक–ध्रुवीय हो गया और अमेरिका एकमात्र महाशक्ति रह गया। अब विचारधारा के स्थान पर आर्थिक मुद्दे महत्वपूर्ण हो गये। 1991 ई. के बाद से भारत के सम्बन्ध रूस और अमेरिका, दोनों से बेहतर होने लगे।

ग) भारत और संयुक्त राष्ट्र संघ : द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के साथ ही विश्व में शांति बनाए रखने की जरूरत थी। इसलिए 24 अक्टूबर 1945 ई. को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापक सदस्यों में से एक था। भारत ने हमेशा से ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा संचालित शांति सेनाओं में अपने सैनिक भेजकर सक्रिय भूमिका निभाई है। 1953 ई. में भारत की 'विजयलक्ष्मी पंडित' संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा की पहली महिला अध्यक्ष बनी। भारत संयुक्त राष्ट्र संघ में सक्रिय भूमिका निभाने व तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्था होने के कारण आज सुरक्षा परिषद् में स्थायी सदस्यता प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है।

1947 ई. में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अनेक भारतीय व विदेशी आलोचकों द्वारा भारत की स्वतंत्रता, संविधान व लोकतंत्र को लेकर अनेक भविष्यवाणियां की गई। ये आलोचक भारत में लोकतंत्र व्यवस्था के लम्बे समय तक न टिक पाने के कयास लगा रहे थे। इनमें से कुछ ने कहा कि भारतीय संघ भाषा, जाति, धर्म व क्षेत्र के आधार पर बिखर जायेगा। लेकिन स्वतंत्रता के 74 साल बाद भी भारत न केवल मजबूती के साथ खड़ा है अपितु उन्नति के पथ पर अग्रसर है।

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

आओ पता करें :

1. भारत कब स्वतंत्र हुआ?
2. राज्य पुनर्गठन आयोग की स्थापना कब की गई?
3. भारत के ''लौह पुरुष'' कौन थे?
4. श्रीलंका कौन से महासागर में स्थित है?
5. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना कब हुई?
6. भारत ने आर्थिक उदारीकरण की नीति कब अपनाई?
7. योजना आयोग की स्थापना कब हुई?

आओ जानें :

1. संविधान सभा का क्या कार्य होता है?
2. भारत के पड़ोसी देशों के नाम बताएं?
3. बांग्लादेश के निर्माण में भारत की क्या भूमिका थी?
4. गुटनिरपेक्ष आंदोलन क्या था?
5. हरित क्रांति' से क्या अभिप्राय है?

आओ विचार करें :

1. भारत में राज्यों का पुनर्गठन कैसे हुआ?
2. इंदिरा गांधी ने 1975 ई. में आपातकाल क्यों लागू किया?
3. भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ में क्या योगदान रहा है?
4. शाहबानो केस क्या था?
5. भारत के आर्थिक नियोजन पर प्रकाश डालें?

©BSEH, Bhiwani Not to be Reprinted

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

जन-गण-मन

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत-भाग्य-विधाता।
पंजाब सिंध गुजरात मराठा
द्राविड़ उत्कल बंग।
विंध्य हिमाचल यमुना गंगा,
उच्छल जलधि तरंग।
तव शुभ नामे जागे,
तव शुभ आशिष माँगे;
गाहे तव जय गाथा।
जन-गण मंगलदायक जय हे,
भारत-भाग्य-विधाता।
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय जय हे।।

भारत माता की जय।

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

©BSEH, Bhiwani
Not to be Reprinted

हरियाणा विद्यालय शिक्षा बोर्ड

Board of School Education Haryana